कल्याण
वर्ष ४२
अङ्क ३

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,६०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र २०२५, मार्च १९६९

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–पुरीधाममें श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्रजीके मङ्गल-विग्रह [कविता] ···	७५७
२–कल्याण ('शिव') ··· ···	७५८
३–ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश ··· ···	७५९
४–निर्वाणका स्वरूप—पूज्य श्रीसंतसेवीजी महाराज(प्रे०—श्रीनारायणप्रसादजी अग्रवाल)	७६१
५–परलोक और पुनर्जन्म माननेमें हर प्रकारसे कल्याण (बाबू श्रीश्रीप्रकाशजी) ···	७६५
६–अहंकार और ममताका नाश ही मुक्ति है (संकलित—महर्षि रमण) ···	७६६
७–अलौकिक अन्तरिक्ष जगत् (श्री० वि० प्र० उपाध्यायजी) ··· ···	७६७
८–जीवात्माकी मरणोत्तर अवस्था—आकर्षण-सिद्धान्त (प्रा० कुमुद विद्यालङ्कार)	७७१
९–मांसाहारीको घोर नारकी यातना [कविता]	७७४
१०–आत्म-नियन्त्रणसे कल्याण (पं० श्री-जयकान्तजी झा) ··· ···	७७५
११–जब ऋषि गहने बनवाने निकले [कहानी] (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ···	७७७
१२–श्रीसूरदासजीका होली-वर्णन (ं० श्री-शिवनाथजी दुबे) ···	७८३
१३–श्रीरामचरितमानसमें बड़े-छोटोंका पारस्परिक स्नेह एवं भक्तिभाव (श्रीराजेन्द्र-प्रसादजी वर्मा, रिसर्च स्कॉलर) ···	७८७
१४–सूक्ष्मशरीर—स्वरूप एवं प्रमाण (रिसर्च स्कॉलर श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी, एम्० ए०, (हिंदी-संस्कृत)बी०एड०,व्याकरणा-चार्य) ··· ···	७९२
१५–सभ्यतासे जगमगाते देश अमेरिकाके प्रधान नगर न्यूयार्ककी स्थिति ('नार्दर्न इन्डिया पत्रिका' फरवरी ११ से) ···	७९४
१६–विश्वमें हाहाकार और हमारा कर्तव्य (श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा) ···	७९५
१७–दानका प्रभाव (श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)	७९८
१८–जीवनका सार [कविता] ···	८००
१९–उपज [कहानी—सत्य घटनापर आधारित] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	८०१
२०–हिंदू राष्ट्रवाद और कुछ भ्रान्तियाँ (श्री-राजेन्द्रप्रसादजी जैन) ···	८०३
२१–सबमें भगवान् देखनेवाला हिंदू-धर्म [कविता] ···	८०७
२२–श्रीबगलामुखी देवीकी उपासना (ब्रह्मचारी श्रीपागलानन्दजी उपनाम पं० श्रीयज्ञदत्त-जी शर्मा 'वानप्रस्थी' वैद्य) ···	८०८
२३–राजस्थानमें अकाल-पीड़ितोंकी सेवा ···	८१३
२४–पढ़ो, समझो और करो ···	८१४

चित्र-सूची

१–महाताण्डव	(रेखाचित्र) ···	मुखपृष्ठ
२–पुरीधाममें श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्रजीके मङ्गल-विग्रह	(तिरंगा) ···	७५७

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० } विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पैसे { विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

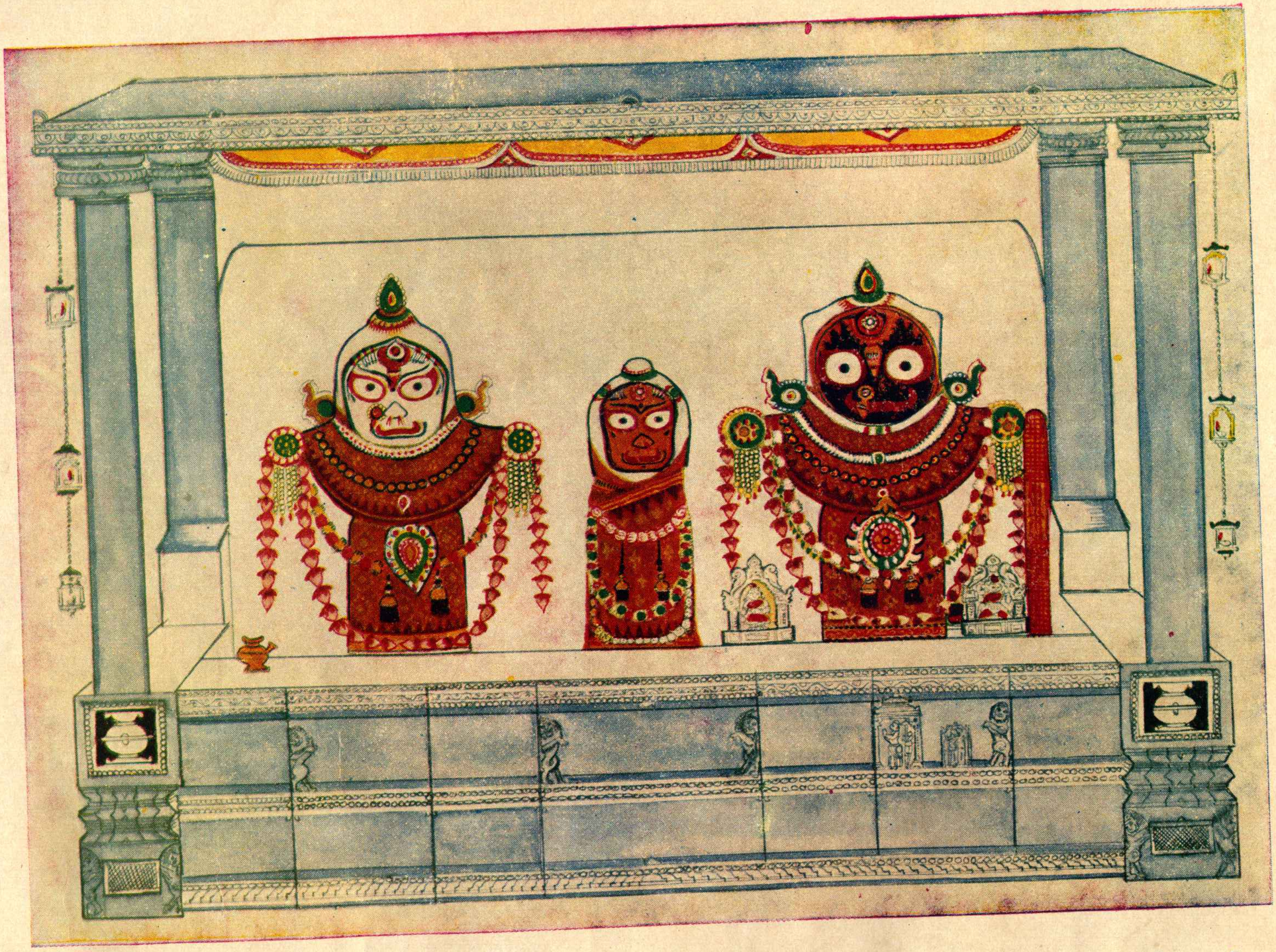

पुरीधाममें श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्रजीके मङ्गल-विग्रह

श्रीसदाशिवरथ शर्माकी कृपासे प्राप्त

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

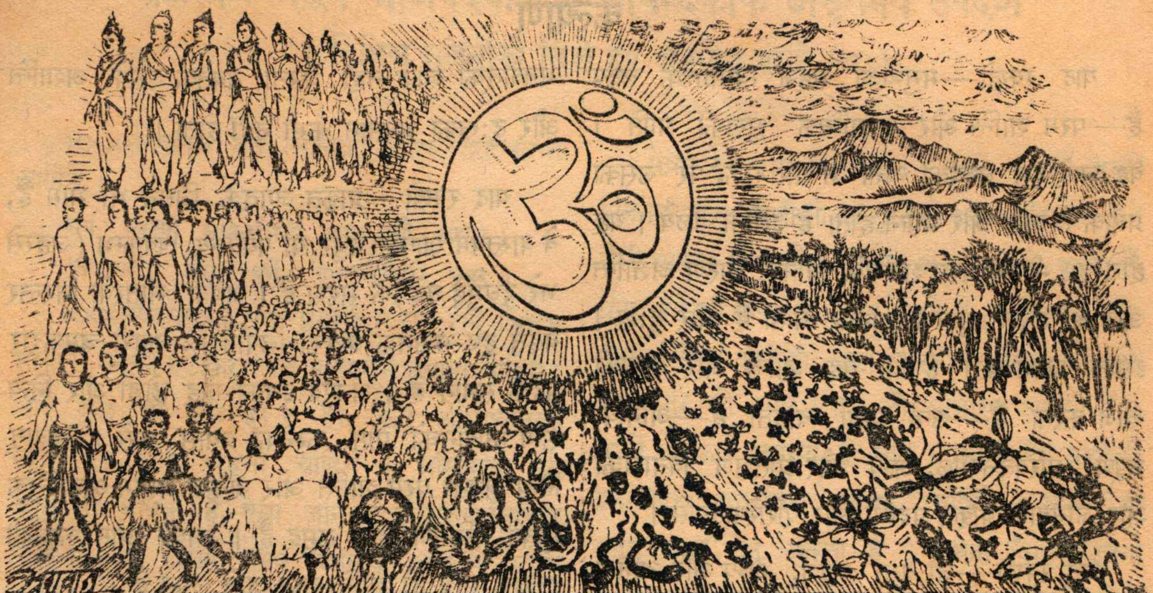

कल्याण

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वचरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥

वर्ष ४३ | गोरखपुर, सौर चैत्र २०२५, मार्च १९६९ | संख्या ३ पूर्ण संख्या ५०८

पुरीधाममें श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्रजीके मङ्गल-विग्रह

जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा—भक्तानुग्रहकातर ईश ।
वने दारुमय रूप अनोखे देते नित मंगल आशीष ॥
सागरतटपर पुरीधाममें रहे दयामय नित्य विराज ।
करते सबका सहज परम हित, सजे विलक्षण मंगल-साज ॥

कल्याण

याद रक्खो—मनुष्यका सहज स्वाभाविक लक्ष्य है—परम शान्ति और आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति। वह चाहे इस लक्ष्यको व्यक्त न कर सके, पर उसका प्रत्येक विचार और प्रयत्न होता है इसीके लिये। यह होते हुए भी वह परम शान्तिके स्थानपर दारुण अशान्ति और आत्यन्तिक सुखके स्थानपर पाता है घोर दुःख। इसका कारण यही है कि वह शान्ति और सुखकी खोज करता है—उन्हें पाना चाहता है—अनित्य, अपूर्ण, परिवर्तनशील, अल्प और प्रतिक्षण विनाशकी ओर जानेवाले प्राकृत पदार्थों और परिस्थितियोंसे।

याद रक्खो—जो वस्तु अपूर्ण, अल्प और अनित्य होती है, वह कदापि शान्ति नहीं दे सकती। चित्त सदा ही पूर्णताकी कामनासे और विनाशके भयसे व्याकुल तथा अशान्त रहता है और जहाँ अशान्ति है वहाँ सुख कहाँ? **'अशान्तस्य कुतः सुखम्।'**

याद रक्खो—इस अशान्त चित्तको लेकर वह सुखकी कामनासे बार-बार प्राकृत जगत्‌में ही सुख पानेका प्रयास करता है—परिणामस्वरूप उसके दुःख विभिन्न प्रकारों और विविध रूपोंमें बढ़ते चले जाते हैं। तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है। कामना और तृष्णासे विवेक नष्ट हो जाता है और वह फिर बुद्धिभ्रष्ट होकर ऐसे-ऐसे कर्म करने लगता है, जिनका परिणाम अधिक-से-अधिक अशान्ति और अधिक-से-अधिक दुःखके रूपमें प्रकट होता है। प्राकृत ऐश्वर्य-अधिकार आदि भोग अन्तरमें निरन्तर अशान्तिकी भीषण आग जलाये रखते हैं—न मिलनेपर भी और बहुत मिलनेपर भी। अतएव शान्ति-सुखके लिये मनुष्य जबतक भोगसुखकी भ्रान्तिसे छूटकर नित्य, पूर्ण, असीम, सर्वथा मधुमय भगवान्‌की खोज नहीं करता, तबतक उसके अशान्ति और दुःखका अवसान कभी नहीं होता।

याद रक्खो—प्राकृत जगत्‌के जितने भी भोग हैं, वे वास्तवमें आपात मधुर या पयोमुख विषकुम्भ (जहरसे भरे दुधमुँहे घड़े)के सदृश हैं। अथवा भीतरके निरन्तर बढ़ते हुए भयानक घावको छिपानेवाले बाहरी चमकदार पर्देके समान हैं। अतएव इनका मोह छोड़ो और नित्य सत्य भगवान्‌को प्राप्त करनेका प्रयास करो। भगवान् नित्य अनन्त परम शान्ति और अनन्त असीम आत्यन्तिक सुखके परिमाणरहित समुद्र हैं। उनको प्राप्त करनेकी इच्छाके साथ ही शान्ति-सुख आने लगते हैं।

याद रक्खो—भगवान् सदा तुम्हारे अपने हैं, भोग कदापि अपने नहीं हैं। भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं, भोग कभी नित्यके साथी नहीं हैं। भगवान् नित्य पूर्ण तथा सुख-शान्तिस्वरूप हैं, भोग अनित्य, अपूर्ण तथा दुःख-अशान्तिमय हैं। भगवान्‌की प्राप्तिमें कर्मकी अपेक्षा नहीं है, भोगकी प्राप्ति कर्मसापेक्ष है। भगवान्‌की प्राप्तिके प्रयाससे पाप कटने लगते हैं और नये पाप बनते नहीं, भोगप्राप्तिके प्रयासमें पाप सुरक्षित रहते हैं और नये-नये पाप बढ़ते रहते हैं।

याद रक्खो—वास्तवमें बुद्धिमान्, सौभाग्यशाली, पुण्यजीवन और सुखी पुरुष वही है जो भोगोंका मोह त्यागकर भगवान्‌को ही जीवनका परम लक्ष्य मानकर उन्हींका भजन करता है। जीवनके दिन बीते जा रहे हैं, मृत्यु समीप आ रही है अतएव अशान्ति तथा दुःखके दलदलसे निकलकर नित्य सत्य भगवान्‌के भजन-में लग जाओ और मानवजीवनको सार्थक करो।

'शिव'

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश

(विभिन्न सज्जनोंको लिखे हुए अमुद्रित पुराने पत्र)

(१)

×××भगवान्‌में मन लगानेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

मन लाग्यो सुख-भोगमें, तरन चहै संसार।
'नारायण' कैसे बनैं, दिवस-रैनिको प्यार॥

×××जयदयालका पुनः प्रेमसहित राम राम।××× संसारसे मनको हटाकर केवल भगवान्‌में लगाना चाहिये। और कुछ भी भले ही न हो, किंतु श्रीभगवान्‌की स्मृति हर समय रहनी चाहिये। सांसारिक संग बहुत ही बाधक है—ऐसा जानकर एकान्तमें निरन्तर ध्यान-साधनमें विशेष समय बितानेका अभ्यास करना चाहिये। यह आपके स्वभावके लिये बहुत ठीक रह सकता है। आपके किसी भी बातकी कमी है नहीं, फिर आप किसलिये विलम्ब कर रहे हैं? काम सलटानेके बाद जोरके साथ साधनमें लगना चाहिये। इस समय भी यह काम कोई बाधक नहीं है, आपका मन स्थिर होना चाहिये।

(२)

××× पुनः राम राम।

(१) श्रीभगवान्‌के नाम, रूप, लीला और धामके विषयमें श्रवण, मनन, स्वाध्याय, कथन करते रहनेसे भगवान्‌में अनन्य श्रद्धा-प्रेम होकर भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये उपर्युक्त भगवान्‌के विषयमें ही समय लगाना चाहिये।

(२) शरीर, दवा-आदि और संसारके विषयकी बातें तुम कम करते होओगे?

(३) शरीर, दवा आदिके विषयकी चिन्ता-फिक्र तो बिल्कुल ही करनेकी जरूरत नहीं है। होनेवाली बात ही होगी, अनहोनी कुछ भी होगी नहीं।

(४) और चाहे सो हो, एक पल भी बिना जप-ध्यानके नहीं बिताना चाहिये।

(३)

सप्रेम राम राम। ××××। तुमने स्वप्नमें हमसे मिलनेकी बात लिखी सो यह तुम्हारी भावनाकी बात है। जैसी भावना और जैसे विचार अन्तःकरणमें रहते हैं, प्रायः वैसे ही स्वप्न आ जाया करते हैं। भगवान्‌से जल-मीनवत् प्रेम करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे बेड़ा पार हो जाय। हम तो साधारण आदमी हैं। हममें तो कोई सामर्थ्य है नहीं। प्रभुसे प्रेम करनेकी इच्छाको उत्तरोत्तर बढ़ाना चाहिये, इससे भी बहुत काम बन सकता है। उनके विरहमें इतना व्याकुल हो जाना चाहिये कि उनके दर्शनके बिना रहा ही न जाय और उनको आना पड़े। इसीमें इस जीवनकी सार्थकता है। सबसे हरिस्मरण।

(४)

सप्रेम राम राम। ××××तुम्हारा यहाँ हमारे पास आनेका बहुत मन करता है और इसलिये तुमने अपनेको बुलानेके लिये हमें लिखा सो तुम अपने भाईजीके पहुँचनेपर उनसे तथा अपने पिताजीसे आज्ञा लेकर यहाँ (स्वर्गाश्रम) आ सकते हो। 'जीवनमें केवल भगवान् राम रह जायँ, नेत्रोंसे निरन्तर उनकी रूप-माधुरीका पान होता रहे, जीवन राम-प्रेममय बन जाय'—ऐसी अभिलाषा लिखी सो यह सब भगवान्‌की कृपासे उनके शरण होकर स्तुति-प्रार्थना करनेसे हो सकता है। ऐसा जीवन बने—इसके लिये भगवान्‌का आश्रय लेकर प्रयत्न भी करना चाहिये। भगवान्‌की कृपासे सब कुछ हो सकता है। तुमने पूछा कि 'अब वह दिन कब आयगा जब प्रभुके वियोगमें भूख-प्यास-नींद सब उड़ जायँगी।' सो हमें तो मालूम नहीं है। फिर भी इसके लिये चेष्टा करनी चाहिये।………… सबसे राम राम।

(५)

सप्रेम राम राम । तुम्हारा पत्र मिला । समाचार मालूम किये । तुमने लिखा कि 'आपसे मिलनेके लिये मन बहुत करता है।' सो जिस तरह हमसे मिलनेके लिये मन करता है, उसी तरह यदि भगवान्‌से मिलनेके लिये मन करता तो भगवत्प्राप्तिमें विलम्ब सम्भव नहीं था। हमसे मिलनेके लिये तो जब तुम्हारे पूरा सुभीता हो तभी माता-पिताकी अनुमति लेकर आ सकते हो । तुमने लिखा कि 'मुझे तो प्रेमकी कमी मालूम पड़ती है' सो प्रेमकी कमी माननेमें ही विशेष लाभ है। प्रेमको पूर्ण मान लिया जाता है, तो फिर प्रेममें वृद्धि न होकर उसमें रुकावट आ सकती है।…………

'भगवान्‌के विरहमें वेदना हो एवं प्रेमकी प्राप्ति हो।' इसका उपाय पूछा सो भगवान्‌के विरहमें व्याकुलता होनेके लिये भगवान्‌से खूब श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करुणभावसे एकान्तमें स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। ××× 'अपने प्रेमास्पदको किस प्रकार सुख पहुँचाऊँ' इसका साधन पूछा सो इसके लिये चराचर प्राणीमात्रको सुख पहुँचानेकी चेष्टा रखनी चाहिये । भगवान् चराचर जगत्‌में व्याप्त हैं । गीताके दसवें अध्यायका बीसवाँ और अठारहवें अध्यायका छियालीसवाँ श्लोक देखना चाहिये।*

* अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥
(गीता १० । २०)

'हे अर्जुन ! मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।'

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
(गीता १८ । ४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।'

मैदानमें जब 'नारायण' का कीर्तन हुआ तब तुम्हें मेरी स्मृति हुई, एवं तुम्हारी मेरे साथ रहनेकी इच्छा हुई । सो इस इच्छासे ही साथ रहनेका फल प्राप्त हो सकता है । मुझे दर्शन देनेको लिखा सो भगवान्‌के दर्शनकी इच्छा रखनी चाहिये; मैं तो साधारण मनुष्य हूँ । 'भगवान् श्रीराम एवं उनके भक्तोंमें नित्य प्रेम बढ़ता रहे'—यही एक अभिलाषा लिखी सो ऐसी अभिलाषा बहुत उत्तम है । इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये ।…………सबसे राम-राम ।

(६)

सादर सप्रेम राम राम। तुम्हारा पत्र मिला । समाचार ज्ञात हुए ।×××तुमने श्रीभरतजी एवं श्रीरामजीका उदाहरण देकर लिखा कि 'जब श्रीभरतजी श्रीरामजीसे मिलनेको गये तब रास्तेमें जो भी उनको मिलते और कहते कि 'हमने प्रभुको देखा है' तो भरतजी उन्हें रामके समान समझते और उनके प्रति उनका भाव उमड़ता । कहीं प्रभुके चरणोंसे अङ्कित रजको देखते तब तो वे सुध-बुध भी भूल जाते । इसी प्रकार मैं भी वैसा ही बनना चाहता हूँ कि कोई प्रेमास्पदका नाम सुनावे तो मन उसके चरणोंमें लोट-पोट हो जाय; परंतु इस प्रकार न तो आपसे मिलनेपर कभी हुआ, न बिछुड़नेपर हृदय फटा ही।' सो इस प्रकारका भाव तो भगवान्‌के प्रति होना चाहिये, वे ही इसके योग्य हैं । इसलिये सब प्रकारसे भगवान्‌के शरण होकर उनके सामने करुणभावसे रोकर स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान् सच्चे हृदयसे की हुई आर्त पुकारको अवश्य सुनते हैं, वे बहुत दयालु हैं । उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है ।

तुमने स्वप्नके बारेमें समाचार लिखा सो ऐसा भगवद्विषयक स्वप्न आना अच्छा ही है ।

तुमने लिखा कि "………की दूकानपर कुछ सत्संगकी बातें हो रही थीं । उन्होंने कहा—'प्रभुकी कृपाके

भरोसेपर रहनेवालेको साधनमें भगवत्कृपाका बहुत बल मिलता है, प्रभुकी कृपापर निश्चिन्तता पूरी होनी चाहिये।'—यह बात तुम्हें बहुत अच्छी लगी" सो ठीक ही है। तुमने लिखा—'बढ़िया तो तब लगेगी जब जीवनमें उतर जायगी।' सो जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करनी चाहिये।……सबको बदलेमें राम-राम कहना चाहिये। तुम्हारी बुआजीको राम-राम कहना चाहिये तथा कहना चाहिये कि दर्शनकी इच्छा तो भगवान्‌की ही रखनी चाहिये। भगवान्‌को हर समय याद रखना चाहिये×××।

निर्वाणका स्वरूप

[पूज्य श्रीसंतसेवीजी महाराज]

(प्रेषक—श्रीनारायणप्रसाद अग्रवाल)

'निर्वाण' शब्दके अनेक अर्थोंमें 'मोक्ष' या 'मुक्ति' भी एक अर्थ है। 'मुक्ति' शब्द 'मुच्' धातुमें 'क्तिन्' प्रत्यय लगानेसे निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ होता है—छुटकारा। प्रश्न होगा, किससे छुटकारा ? उत्तर होगा—मोह-पाशसे—अज्ञान-ग्रन्थिसे। गो० तुलसीदासजीके शब्दोंमें हम कह सकेंगे—

'जीव हृदय तम मोह बिसेषी। छूट न ग्रन्थि परइ किमि देखी॥'

तथा—

'जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥'

(रामचरितमानस)

इस ग्रन्थिसे विमुक्त होनेको ही 'मुक्ति' या 'मोक्ष' कहते हैं। किंतु 'मोक्ष' कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो किसी एक स्थानमें रक्खी हो अथवा यह भी नहीं कि उसकी प्राप्तिके लिये किसी दूसरे गाँव या प्रदेश जाना पड़े। वास्तवमें हृदयकी अज्ञानग्रन्थिके नाशको ही 'मोक्ष' कहते हैं। शिवगीता १३। ३२में है—

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥

महाप्राज्ञ लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलकजीने यहाँ इस सम्बन्धमें और भी अधिक स्पष्टीकरण किया है। वे कहते हैं—'जब ब्रह्मात्मैक्यका पूरा ज्ञान हो जाता है, तब आत्मा ब्रह्ममें मिल जाता है और ब्रह्मज्ञानी पुरुष आप ही ब्रह्मरूप हो जाता है। इस आध्यात्मिक अवस्थाको ही ब्रह्मनिर्वाण मोक्ष कहते हैं। यह ब्रह्मनिर्वाण किसीसे किसीको दिया नहीं जाता या किसी दूसरे स्थानसे आता नहीं अथवा इसकी प्राप्तिके लिये किसी अन्य लोकमें जानेकी भी आवश्यकता नहीं। पूर्ण आत्मज्ञान जब और जहाँ होगा, तभी उसी स्थानपर मोक्ष धरा हुआ है; क्योंकि मोक्ष आत्मासे कुछ निराली स्वतन्त्र वस्तु या स्थल नहीं है।'

पालीभाषामें निर्वाणका अर्थ है—वीत-तृष्ण अर्थात् तृष्णा-रहित।

'निर्वाण'का दूसरे शब्दोंमें—प्रदीपका बुझ जाना या वासनारूपी दीपकका अत्यन्ताभाव हो जाना भी अर्थ किया जाता है।

तीसरी भाँति 'निर्वाण'का अर्थ 'बाण-रहित' भी किया जा सकता है; क्योंकि एक बार किसीकी (सृष्टि-निर्माणविषयक) जिज्ञासा करनेपर भगवान् बुद्धने उसको इस भाँति मधुर उत्तर दिया था—'आवुस ! यदि किसीको तीर लग जाय और उस घावसे वह पीड़ित हो, ऐसी अवस्थामें उस बाण-विद्ध जनको क्या करना उचित है ? बाणको निकालकर उस घावकी मरहम-पट्टी करना या उस तीरके परिमाणकी या उसके निर्माण-कर्ताकी या उसके उपादानकी खोज करना ?'

जिज्ञासुने कहा—'नहीं, भन्ते ! पहले मरहम-पट्टी करना उचित है ।' तथागतने कहा—'आवुस ! तुम कालके शरसे विद्ध हो चुके हो । अतएव सर्वप्रथम तुम अपनेको इससे मुक्त करो । पीछे चिन्तन करना कि सृष्टि-रचना किसने की, क्यों की और किस उपादानसे की ? इत्यादि ।'

उपर्युक्त गाथासे विदित होता है कि कालके बाणसे रहित होना भी 'निर्वाण' है । इस दृष्टिसे साधनाद्वारा काल-विजयी जनको 'निर्वाण-प्राप्त' कहना, मेरे जानते अनुचित या अयोग्य नहीं ।

'निर्वाण'की और भी कितनी परिभाषाएँ हम बौद्ध-ग्रन्थोंमें पाते हैं । यथा—सभी संस्कारोंके शान्त हो जानेसे, सभी उपाधियोंके अन्त हो जानेसे और तृष्णाके नाशसे राग-रहित होना ही 'निर्वाण' है । (दीघनिकाय)

एक बार एक परिव्राजकने तथागतके पास जाकर पूछा—'भन्ते ! निर्वाण किसे कहते हैं ?' तथागतने उत्तर दिया—'आवुस ! जो राग, द्वेष और मोहका क्षय है, इसीको 'निर्वाण' कहते हैं ।' (बौद्धदर्शन तथा साहित्य)

एक बार एक संन्यासीने भगवान् बुद्धसे प्रार्थना की—'भन्ते ! निर्वाण साक्षात्कारके लिये कौन-सा मार्ग है ?' भगवान्ने कहा—'आवुस ! निर्वाण साक्षात्कारके लिये यह आर्य आष्टाङ्गिक मार्ग है । इसीपर चलकर निर्वाण-लाभ किया जाता है ।' (बौद्धदर्शन तथा साहित्य)

बौद्धग्रन्थोंमें हम जिस भाँति 'निर्वाण'की चर्चा पाते हैं, संतोंकी वाणियोंमें उससे कम चर्चा नहीं है । ऐसा लगता है, सम्पूर्ण संतवाणी जैसे निर्वाणसे ओत-प्रोत है । इतना ही नहीं, इस भूतलपर भगवान् बुद्धके आविर्भावसे ढाई हजार वर्ष पूर्वकी रचना—श्रीमद्भगवद्गीतामें भी 'निर्वाण', 'ब्रह्मनिर्वाण' आदिका भरपूर वर्णन मिलता है । यथा—

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

(गीता २ । ७२)

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

(गीता ५ । २४–२६)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥

(गीता ६ । १५)

'निर्वाण' विषयक वर्णनसे संतवाणी शून्य नहीं, वरं परिपूरित है । जिसकी झाँकी संतोंकी निम्नलिखित वाणीमें कीजिये—

जहाँ पुरुष तहँवाँ कछु नाहीं, कहै कबीर हम जाना ।
हमरी सैन लखै जो कोई, पावै पद निरबाना ॥

(संत कबीरसाहब)

गुरु नानकदेवजीने 'निर्वाण' पदको नित्य शाश्वत बताया और कहा कि बिना अन्तःकरण-शुद्धिके कोई भी उसे पा नहीं सकता । अन्तर्नादमें रत होनेपर ही उसकी प्राप्ति सम्भव है । जैसे—

तब लगु महलु न पाइऐ जब लगु साचु न चीति ।
सबद रपै घरु पाइऔ निरबाणी पदु नीति ॥

(गुरु नानकसाहब)

उदासी सम्प्रदायके प्रवर्तक श्रीश्रीचन्दजी महाराजकी वाणीमें 'निर्वाण' शब्दकी अभिव्यञ्जना इस भाँति की गयी है—

गुरु अबिनासी सूछम बेद । निरबान विद्या अपार भेद ॥

संत जगजीवन साहबकी वाणीमें हम इस प्रकार पाते हैं—

जाके लगी अनहद तान हो निर्वान निर्गुन नाम की।

संत गरीबदासजीने कहा है—

अल्लह अविगत राम है, बेचगून निरबान।
मेरा मालिक है सही, महल मढ़ी नहिं थान॥

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजके शब्दोंमें हम कह सकेंगे—

रामचंद्रके भजन बिनु जो चह पद निरबान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिन पूँछ बिषान॥

संत दूलनदासजीने गुरु नानकदेवकी भाँति ही बताया है कि सुखकन्द अनहदनादकी साधनाके पश्चात् निर्वाण नामकी प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं। निर्वाण-प्राप्ति-पथमें दुःख दूर और कर्म-भ्रम विनाश हो जाते हैं। यथा—

सुख कंद अनहद नाद सुनि, दुख दुरित क्रम भ्रम भाज।
सतलोक वर सो पानि, धुनि निर्बान यहि मन बाज॥
(संत दूलनदासजी)

उदान नामक पुस्तकके बाहियसुत्तमें—बाहिय-नामक भिक्षुको निर्वाण प्राप्त हुआ, ऐसी कथा आती है। निर्वाणका स्वरूप क्या है, इसपर प्रकाश डालते हुए भगवान् बुद्ध कहते हैं—

यत्थ आपो च पठवी तेजो वायो न गाधति।
न तत्थ सुक्का जोनन्ति आदिच्चो न पकासति॥
न तत्थ चन्दिमा भाति तमो तत्थ न विज्जती।
यदा च अत्तना वेदि मुनि मोनेन ब्राह्मणो।
अथ रूपा अरूपा च सुख दुक्खा पमुच्चति॥

अर्थात् (निर्वाण वह है) जहाँ पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायुका प्रवेश नहीं है। न वहाँ तारे चमकते हैं, न सूर्य प्रकाशमान होते हैं। वहाँ चन्द्रमाका प्रकाश भी नहीं है, (पर) अन्धकार भी वहाँ नहीं है। जब मुनि ब्राह्मण मौन हो (उसे) स्वयं जान लेता है, तो रूप-अरूप, सुख-दुःखसे मुक्त हो जाता है।

पुनः दीघनिकायके केवल सुत्तमें 'निर्वाण'का वर्णन इस प्रकार है—

विञ्ञानं अनिदस्सनं अनन्तं सब्बतोपमं।
एत्थ आपो च पथवी तेजो वायो न गाधति॥
एत्थ दीघं हस्सं च अणुं थूलं सुभासुभं।
एत्थ नामं च रूपं च असेसं उपरुज्झति।
विञ्ञाणस्स निरोधेन एत्थेतं उपरुज्झति॥

अर्थात् (निर्वाण) विज्ञान है, जो (इन आँखोंसे) देखा नहीं जा सकता। वह अनन्त है तथा सर्वत्र प्रभासम्पन्न है। यहाँ पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायुका प्रवेश नहीं है। यहाँ दीर्घ, ह्रस्व, अणुरूप, स्थूलरूप, शुभ, अशुभ नाम तथा रूप आदि विषयक समस्त कल्पनाएँ बिल्कुल (अशेष) समाप्त हो जाती हैं। (संस्कृत) विज्ञानके निरोधसे ये सारी बातें निरुद्ध हो जाती हैं। (क्योंकि जिसके द्वारा ये समस्त विकल्प किये जाते हैं, वह उस अवस्थाको प्राप्त होनेसे निरुद्ध हो जाता है। अर्थात् निर्वाणकी अवस्था इन सभी प्रपञ्चोंसे परे है।

भगवान् बुद्धने जिसको 'निर्वाण' की संज्ञा दी, ऋषियों एवं संतोंने उसको मुक्तिके नामसे अभिहित किया। इसी हेतु निर्वाणविषयक वर्णन बौद्धग्रन्थोंमें जैसा किया गया है, ठीक उसी भाँति मोक्षपदका विवेचन वेद, उपनिषद्, गीता एवं संतोंकी वाणियोंमें है। आर्षग्रन्थोंके अनुशीलन करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्धने जिसको निर्वाणपद कहा है, वही वैदिक सद्ग्रन्थोंमें परमपद या परमात्मपद कहकर वर्णित है। अब उपर्युक्त बुद्धवाणीको निम्नलिखित वाणियोंसे मिलाकर देखिये।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास॥
(ऋग्वेद १२९।२)

अर्थात् उस समय मृत्यु नहीं थी और उस समय न अमृत था। अर्थात् जीवनकी सत्ता, जीवनका लोप

दोनों नहीं थे। न रात्रिका ज्ञान था और न दिनका ज्ञान था। उस तत्त्वका स्वरूप प्राणशक्तिरूप था; परंतु वह स्थूल वायु न था। वह एक अपने ही बलसे समस्त जगत्को धारण करनेवाली शक्तिसे युक्त था। उससे दूसरा पदार्थ कुछ भी अधिक सूक्ष्म न था।

कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली २ में पढ़िये—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

अर्थात् वहाँ (परमात्मपदमें) सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते और न यह बिजली ही चमचमाती है, फिर इस अग्निकी तो बात ही क्या ? उसके प्रकाशमान होते हुए ही सब कुछ प्रकाशित होता है और उसके प्रकाशसे ही यह सब कुछ भासता है।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥
(गीता १५। ६)

अर्थात् उस पदको सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि प्रकाशित नहीं करते हैं। उसमें जाकर फिर कोई लौटता नहीं है, वह मेरा परमधाम है।

इसका विस्तृत वर्णन संत कबीर साहबकी वाणीमें पढ़िये—

सखिया वा घर सबसे न्यारा, जहँ पूरण पुरुष हमारा॥
जहँ नहिं सुख-दुःख साँच झूठ नहिं, पाप न पुन्न पसारा।
नहिं दिन-रैन चन्द नहिं सूरज बिना जोति उजियारा॥
नहिं तहँ ज्ञान-ध्यान नहिं जप-तप, बेद किते बन बानी।
करनी-धरनी रहनी-गहनी ये सब जहाँ हिरानी॥
धरनहिं अधर न बाहर भीतर, पिण्ड ब्रह्माण्ड कछु नाहीं।
पाँच तत्त गुन तीन नहीं तहँ, साखी शब्द न ताहीं॥
मूल न फूल बेलि नहिं बीजा, बिना बृच्छ फल सोहै।
ओअं सोहं अर्ध उर्ध नहिं, स्वासा लेखन को है॥
नहिं निर्गुन नहिं सर्गुन भाई, नहीं सूक्ष्म स्थूलं।
नहिं अच्छर नहिं अबिगत भाई, ये सब जगके मूलं॥
जहाँ पुरुष तहँवाँ कछु नाहीं, कहै कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखै जो कोई, पावै पद निरबाना॥

गुरु नानकदेवजीकी वाणीमें—

झिलमिल झिलकै चंदु न तारा, सूरज किरणि न बिजुलि गैणारा।
अकथी कथहु चिहनु नहिं कोई, पूरि रहिआ मनु भाइदा॥

संत पलटू साहब कहते हैं—

जहँवाँ धरती नाहिं अकासा। चाँद सुरज नाहीं परकासा॥
जहँवाँ ब्रह्मा विष्णु न जाहीं। दस अवतार न तहाँ समाहीं॥
जहँवाँ पवन जाय नहिं पानी। वेद कतेब मरम नहिं जानी॥
आदि जोति ना बसै निरंजन। जहँवाँ सून्य सबद नहिं गंजन॥
निरंकार ना वहाँ अकारा। सत्य सबद नाहीं विस्तारा॥
इत्यादि।

संत केशवदासजीकी सुनिये, निर्वाणके सम्बन्धमें वे कहते हैं—जहाँ जगमग ज्योति नहीं, चलनेके लिये राह नहीं, निवासनिमित्त प्रासाद नहीं, सूर्य, चन्द्रका प्रकाश नहीं और दिन-रातका भाव नहीं, वही निर्वाण-पद या परमपद है। यथा—

जगर मगर नहिं डगर बगर नहिं,
रबि ससि निसु दिन भाव नहीं॥

संत तुलसी साहब (हाथरस) ने निर्वाणपदको बन्धनरहित पद सिद्ध किया। उन्होंने स्वयं अपनी निस्बत कहा है—सद्गुरुके वरदहस्तको पाकर मैं बन्धन तोड़कर बाहर निकल गया तथा वहाँ पहुँचा जहाँ न तो धूप है, न चाँद है और न सूर्य ही।

फंद फाड़ि बाहेर गई, लई जो सतगुरु बाँह।
जहाँ धूप रबि ससि नहीं, तुलसी पहुँचे ताँह॥

और संत चरणदासजीकी वाणीमें इस प्रकार है—

जहाँ चन्द नहिं सूर जहाँ नहिं जगमग तारे।
जहाँ नहीं त्रैदेव त्रिगुन माया नहिं लारे॥
जहाँ बेद नहिं भेद जहाँ नहिं जोग जज्ञ तप।
जहाँ पवन नहिं धरनि अगिनि नहिं जहाँ गगन अप।
जहाँ रात नहिं दिवस है, पाप पुन्य नहिं ब्यापई॥
आदि अन्त अरु मध्य है, कहै चरणदास ब्रह्म आपही।

साधकों या संतों अथवा श्रावकों या अर्हन्तोंका अन्तिम पद 'निर्वाण' वा 'मोक्ष' पद ही है। इसीकी प्राप्ति होनेपर भगवान् बुद्धने ज्ञानकी मादकतामें कहा था—

गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसी।
सब्बाते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखितं।
विसंखारगतं चित्तं तण्हानं खय मज्झगा॥
(धम्मपद-जरावग्गो)

अर्थात् हे गृहके निर्माण करनेवाले! मैंने तुम्हें देख लिया, तुम फिर घर नहीं बना सकते। तुम्हारी कड़ियाँ सब टूट गयीं, गृहका शिखर गिर गया। चित्त संस्काररहित हो गया, तृष्णाओंका क्षय हो गया।

इसी भाँति महोपनिषद् और योगशिखोपनिषद्के ऋषियोंने ज्ञान, योग और भक्तिकी भागीरथीमें अवगाहन करते हुए कहा था—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

अर्थात् उस परेसे परे (ब्रह्म)को देख लेनेपर हृदयकी ग्रन्थि खुल जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

यह है 'निर्वाण'के स्वरूपका समासरूप।

परलोक और पुनर्जन्म माननेमें हर प्रकारसे कल्याण

(लेखक— बाबू श्रीश्रीप्रकाशजी)

ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य चिरकालसे ही जन्म और मृत्युकी अनिवार्य घटनाओंको देखकर उनके रहस्यको जानना चाहता है। वह यह भी जानना चाहता है कि मनुष्य-मनुष्यमें इतना अन्तर क्यों होता है? और सबको ही इतना दुःख और शारीरिक पीड़ा क्यों सहनी पड़ती है? इसीसे भिन्न-भिन्न धर्मों और सम्प्रदायोंके प्रवर्त्तकोंने इस सम्बन्धमें विचारकर अपने अनुयायियोंको शिक्षा देनेका प्रयत्न किया है और अपने शब्दोंद्वारा उन्हें सान्त्वना भी पहुँचायी है।

यह रहस्य ऐसा है कि कोई कह नहीं सकता कि वास्तवमें तथ्य क्या है? बुद्ध भगवान्ने कहा है कि 'ऐसे प्रश्न मत उठाओ। जो पूछता है वह भी गलती करता है और जो उत्तर देता है वह भी गलती करता है।' यूरोपीय वैज्ञानिक और दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सरने कहा है कि 'ये बातें नहीं ही जानी जा सकतीं। ये 'अननोएबुल' (unknowable) हैं।' मुसल्मानोंका विश्वास है कि 'यह सब किस्मतकी बात है।' ईसाई कहते हैं कि 'यह ईश्वरकी इच्छापर आश्रित है।'

जिस धर्मको आज 'हिंदूधर्म'के नामसे जाना जाता है, उसके अनुयायियोंका स्पष्ट मत है कि जो कुछ हमपर बीतती है वह सब हमारे ही अपने कर्मका फल है और उनका स्पष्ट मत है कि जीव बार-बार शरीर धारण करता है और अपने कर्मके फलोंके रूपमें ही उसे जन्म-मृत्यु प्राप्त होते हैं और उसे सुख-दुःख सहन करने पड़ते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कहा है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

अर्थात् जो पैदा होता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है और जिसकी मृत्यु होती है, वह अवश्य पैदा भी होता है।

साधारणतः हिंदुओंका यह भी विश्वास है कि जीव अपने कर्मके अनुसार ही भिन्न-भिन्न लोकोंमें विचरता है। इहलोक और परलोककी चर्चा हम बराबर ही करते रहते हैं। भिन्न-भिन्न हिंदुओंके प्रायः सभी धार्मिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारोंमें अन्तर है, पर शायद ही कोई हिंदू हो जो कर्म और पुनर्जन्ममें न विश्वास रखता हो, जो इहलोकको ही मानता हो और जिसकी परलोकमें आस्था न हो।

घूम-फिरकर बात इसपर अटकती है कि हम यह जानना चाहते हैं कि 'हम कहाँसे आये और कहाँ जा रहे हैं?' इसके उत्तरके सम्बन्धमें लोगोंने बहुत तरहसे अनुमान लगाये हैं। प्रमाण एकत्र करनेके लिये बहुत प्रयत्न किया गया है, पर सबको इसमें सफलता नहीं मिली। इसमें तो

कोई संदेह नहीं कि सब जीवोंका जन्म होता है, सबकी मृत्यु भी निश्चित है। सभीको सुख-दुःख होते हैं। विभिन्न विचारकगण इस सम्बन्धमें सदासे विचार करते आये हैं परंतु वे किसी परिणामपर नहीं पहुँच सके। उमर खय्याम कहते हैं कि 'युवावस्थामें मैं बड़ी तत्परतासे विद्वानोंके पास जाता था। उनसे बहुत बहस करता था, जिससे हमें यथार्थका पता लगे, परंतु मुझे कोई लाभ नहीं हुआ। मैं वहीं-का-वहीं रह गया। प्रश्नोंका उत्तर नहीं मिला।'

उत्तर मिले या न मिले, इसमें तो कोई संदेह नहीं कि जन्म-मृत्यु, सुख-दुःखके आन्तरिक रहस्यको विचारकगण अवश्य जानना चाहेंगे। हमारे हिंदूधर्मके दार्शनिकोंने तो इसकी लगातार विवेचना की है। उपनिषद्, योगवासिष्ठ आदि इन्हीं प्रश्नोंका उत्तर देनेका प्रयत्न करते हैं; परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि उनके उत्तरोंसे सबको संतोष नहीं हुआ। इसीलिये इसकी खोजमें लोग अभी भी लगे हुए हैं और उन्हें संतोष नहीं है।

जो कुछ भी हो जन्म-मृत्यु, सुख-दुःखसम्बन्धी रहस्योंके उद्घाटनके लिये जितनी विचारधाराएँ उपस्थित की गयी हैं, उनमें सम्भवतः सबसे अधिक संतोषप्रद और न्याय-संगत कर्म और पुनर्जन्मकी ही विचारधारा प्रतीत होती है। इहलोकके अतिरिक्त परलोकमें विश्वास करनेसे ही मनुष्य अपने जीवनको सुव्यवस्थित बना सकता है और समाजके समुचित संघटनमें सहायक हो सकता है।

अपने जीवनमें सुख और सान्त्वना प्राप्त करने और अपने समाजको सुसंघटित करनेकी सबको ही अभिलाषा होती है। इसीके लिये मनुष्य आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारोंकी ओर प्रवृत्त होता है। समाजके लिये आवश्यक है कि व्यक्तिरूपी उसके सब अङ्ग उचितरूपसे व्यवहार करें। इसीके लिये शासन आदिकी व्यवस्था की गयी है; पर इसे पर्याप्त न पाकर लोगोंके मनमें लोक-परलोकका विचार करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

आध्यात्मिक शिक्षकोंने यह बतलाना चाहा कि यदि अच्छे कार्यका फल किसी कारण इस लोकमें नहीं मिलता तो परलोकमें अवश्य मिलेगा। बुरे कार्यके फलसे हम अपनेको इस लोकमें यदि बचा भी लें तो परलोकमें उसके फलस्वरूप अवश्य दण्ड सहना पड़ेगा। छोटी अवस्थासे ही यदि ऐसी शिक्षा दी जाती है तो उसके अमिट संस्कार पड़ जाते हैं और मनुष्य ठीक उसी प्रकारका आचरण करता है।

परलोक है या नहीं, पुनर्जन्म होता है या नहीं? इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे पास न भी हो तथापि यह तो सुस्पष्ट है कि इन विचारों तथा सिद्धान्तोंसे हमें वह शान्ति और सान्त्वना अवश्य मिलती है, जिसकी ही हम सब खोजमें हैं और इसके कारण समाजको सुसंगठित करनेमें हमें सहायता भी मिलती है, जो हम सबको ही अभीष्ट है। सब लोग इनमें चाहे विश्वास न करें; परंतु उन्हें यह तो अनुभव करना ही होगा कि व्यावहारिक दृष्टिसे भी ये विचार-सिद्धान्त अत्यन्त लाभदायक हैं और इनको माननेमें तथा इनमें निहित प्रेरणाओंको स्वीकार करने और उनके अनुसार चलनेमें हम सबका हर प्रकारसे कल्याण है।

अहंकार और ममताका नाश ही मुक्ति है

किसी भी उपायसे अहंकार तथा ममताका नाश करनेका नाम ही मुक्ति है, फिर भी ये दोनों एक-दूसरेके आश्रयमें टिके रहते हैं। इसलिये एकका नाश दूसरेके नाशका कारण बन जाता है। मन-वाक्से अगोचर ऐसी मनोदशा प्राप्त करनेके लिये नामरूपादिके अहंकारको निकाल देना ज्ञान-मार्ग है और भगवान्में ममता करके सांसारिक ममताको मार भगाना भक्ति-मार्ग है। इन दोनोंमेंसे कोई एक मार्ग पर्याप्त है। भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्गका परिणाम समान है। इसके विषयमें शङ्का करनेका कोई कारण नहीं है।

—महर्षि रमण

अलौकिक अन्तरिक्ष जगत्

(लेखक—श्री० वि० प्र० उपाध्यायजी)

अवकाशमें अनेक ब्रह्माण्ड हैं । प्रत्येक ब्रह्माण्डके सूर्यमण्डल आदि भिन्न-भिन्न हैं । हर एक सूर्यमण्डलका सौर जगत् रहता है । नक्षत्रादि मण्डल उसीमें विद्यमान हैं । पृथ्वीके चारों ओरके अन्तरिक्ष-विभागको खगोल कहते हैं । खगोलके अदृश्य वातावरणमें अनेक आश्चर्यजनक जीव-सृष्टियाँ हैं । अवकाशमें लोकान्तरोंका पार नहीं । इसीलिये आकाशमण्डल अगाध, अपार और अपरिमित माना जाता है । हर एक लोकमें उत्तरोत्तर शक्तिसम्पन्न जीवात्माओंका निवास है । इसीलिये सर्वत्र शक्तिका साम्राज्य माना हुआ है । तभी तो सप्तशतीमें **'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता'** कहा गया है । ऐसी सर्वव्यापी महाशक्तिको जगजननीका पद मिलना यथार्थ है । वही महामाया और महेश्वरका क्रीडाक्षेत्र पञ्चभूतात्मक सृष्टियाँ हैं । महामायाके साथ महेश्वरका संकल्पात्मक संगम होनेसे ही ब्रह्मा, शेषनाग, काल आदिका प्रादुर्भाव हुआ है । इसी कारणवश परमात्माका स्वरूप विराट् माना जाता है । विराट्का दर्शन उन्हींकी कृपासे सम्भावित है । भगवत्कृपापात्र अर्जुनको दिव्य दृष्टि देनेपर ही वह विराट् विभुको देख सका । दिव्य दृष्टिसे ही **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'**के विलक्षण आश्चर्यजनक अन्तरिक्ष जगत्का स्वानुभव होता है । हमारे पूर्वज आर्यधर्मा ऋषि-मुनि ऐसे ही दिव्य दृष्टिवाले थे । अनन्य शरणागतिके बिना दिव्य दर्शनकी प्राप्ति सम्भावित नहीं है । अनन्य शरणागतिके मूलमें सत्संग है । सत्संगसे ही सर्वात्मा सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वरकी सर्वत्र सत्ता देखी जाती है । मायानटीका कार्य-कलाप मायापतिकी सत्तासे ही चुपचाप एकान्तभावसे अविरत चालू है । विचित्र अनिर्वचनीय महामायाका ही नाटक लोकान्तरोंमें विद्यमान है । वही नट-नटीका नहीं टिकनेवाला नाटक ही सकल संसार है । संसारमें सार है, वह निःसार भी है । दैवी जीवोंके लिये कल्पवृक्ष-सम संसार सारपूर्ण है, आसुरी जीवोंके लिये असार है । इस प्रकार लोकान्तरोंका होना युक्तियुक्त है ।

हमारे इस ब्रह्माण्डमें चौदह लोक माने जाते हैं । ऊर्ध्व लोककी सप्त संख्या—**'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य'**—माने गये हैं और अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल—ये अधोलोक प्रसिद्ध हैं । हर एक लोकका अलग-अलग वातावरण होता है । भूलोकके ऊपर अन्तरिक्ष विभाग रहता है । अन्तरिक्ष विभागमें कई सूक्ष्म अदृश्य लोक विद्यमान हैं । ये सूक्ष्मलोक हमारे लिये परलोक हैं । परलोक है, इसीलिये परलोक-विज्ञान भी है । आनन्दकी बात है कि यह परलोक-विज्ञान भारतीय है । जो स्थूल देहधारियोंका लोक है, वह स्थूल जगत् है और सूक्ष्म शरीरियोंका जो लोक है उसे सूक्ष्म सृष्टि कहते हैं । 'इ' धातुका अर्थ होता है 'जाना' । इत भूतकृदन्तका रूप है । प्र+इत=प्रेत शब्दका अर्थ है—इस लोकसे परलोकमें गया हुआ । इसी तरहसे संस्कृतमें 'भू' धातुका भूतकृदन्त रूप 'भूत' है । इसका अर्थ है—परलोकमें अपना अस्तित्व रखनेवाला जीवात्मा । जिस तरह पृथ्वीसे जलतत्त्वका, जलसे अग्नितत्त्वका, अग्निसे वायुतत्त्वका, वायुसे आकाशतत्त्वका यथाक्रम अत्यधिक परिमाण है, उसी तरह स्थूल सृष्टिकी अपेक्षा सूक्ष्म जगत् अत्यन्त विशाल है । सूक्ष्म जगत्के जीवात्माओंमें भी उनकी मनःशक्तिके तारतम्यसे वैषम्य देखा जाता है । जहाँ वैषम्य है, वहीं विश्व है । विश्व-वैचित्र्य सर्वत्र विद्यमान है । वैषम्यका कारण मनःशक्ति है । जीवमात्रमें मनःशक्तिकी न्यूनाधिकता देखी जाती है । अन्तरिक्षके जीवात्माओंका भी मनके कारण सुख-दुःखका अनुभव भिन्न-भिन्न होता है । सुख और दुःखकी पहचानका साधन मन है । तन छोड़नेसे सूक्ष्म शरीरमें मन रहता है और मनके कारण वहाँ सुख-दुःखका परिचय होता है ।

स्थूल देहधारी प्राणियोंमें मनुष्यकी दृष्टि सबसे अधिक उदार है; क्योंकि अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मानव, जगत्के प्रायः बहुत भागोंको देख सकता है; तब भी उसकी दृष्टि शास्त्र-दृष्टिकी तुलनामें अत्यन्त मर्यादित है । मनुष्य जितना देख सकता है, वह उसका स्थूल दृश्य जगत् है और शेष अदृश्य सृष्टि है, परलोक है ।

चींटियोंको, मक्खियोंको, पशुओंको और मनुष्यादिको नेत्रेन्द्रिय होती है । सभी जीव अपनी चाक्षुषेन्द्रियसे काम लेते हैं । हर एकको अपने नेत्रपर आस्था—श्रद्धा है और प्रत्येक जीव प्रकृतिके नियमानुसार दूसरेकी आँखको प्रमाण-भूत माननेको तैयार नहीं है । यह निर्विवाद सत्य है कि हर एककी दृष्टिमें भेद है ही । चींटी अपनी आँखसे जिस

तरह अपना जगत् देखती है, वह सत्य होनेपर भी बहुत मर्यादित है और शेष जगत् उसके लिये अदृश्य है। मक्खीकी दृष्टि चींटीकी दृष्टिकी अपेक्षा विशाल है। उससे अधिक विशाल दृष्टि पशुकी होती है; तब भी उन दृष्टियोंको सम्पूर्ण अर्थात् पर्याप्त माना नहीं जाता। हर एक जीव अपनी मर्यादित दृष्टिसे देखता है, अतएव उसके लिये शेष सृष्टि अदृश्य रूपसे रहती है।

मनुष्यका नेत्रगोलक भी मर्यादित है। मानव जो देख सकता है, उतना ही यहाँ है, ऐसा मानना यथार्थ बात नहीं; क्योंकि सूक्ष्मदर्शक और दूरदर्शक यन्त्रद्वारा उसको ऐसी अद्भुत वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे वह प्रथम अनजान था। उसकी स्वाभाविक नेत्रेन्द्रिय मर्यादित होनेके कारण ऐसा हो सकता है; परंतु यन्त्रकी शक्तिकी अधिकतासे वह नयी-नयी अज्ञात बातोंका रहस्य भी प्रकट करनेमें सक्षम बनता है। इससे पता चलता है कि सूक्ष्म सृष्टिकी विशालता विद्यमान है। अपने चारों ओर सूक्ष्म जगत् होनेपर भी अपनी स्वाभाविक नेत्रशक्तिसे वह दृष्टि-गोचर नहीं है। सूक्ष्म जगत्को ही अदृश्य जगत् कहते हैं।

वेदादि शास्त्रोंके सम्यक् अध्ययनसे हमें पता चलता है कि मानवकी स्वाभाविक दृष्टि और यान्त्रिक दृष्टि, सृष्टिके सूक्ष्मतम पदार्थोंको देखनेमें समर्थ नहीं हैं। उसके लिये मानवको योगदृष्टिकी आवश्यकता है। यह योगदृष्टि योगशास्त्रके कठिन पथपर चलनेसे सहज साध्य है। यम, नियम, संयमके बिना कभी भी यौगिक शक्ति हस्तगत नहीं होती। धारणा, ध्यान और समाधिकी अवस्था संयमके सिवा सम्भावित नहीं है। मनकी एकाग्रता करनेमें संयम सहायक है। चन्द्रमें, ध्रुवमें, सूर्यमें संयम करनेसे यथाक्रम तारकोंका ज्ञान, ध्रुवकी गतिका ज्ञान और भुवनज्ञान भी होता है। सूर्यमें यथाशास्त्र संयम करनेसे भाग्यवान् साधकको भुवनज्ञान प्रत्यक्ष होता है। उसके लिये स्थूल दृष्टि, सूक्ष्मदर्शक यन्त्र अथवा दूरदर्शक यन्त्र व्यर्थ है। शास्त्रोंमें सूचित लोकोंका वर्णन पढ़कर ही हम असम्भव कह देते हैं और यह स्वाभाविक ही है, उसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। कैलास पर्वतकी ऊँचाई चींटीके मनमें न आ सके और उसको असम्भव-जैसा लगे; परंतु उससे कैलास पर्वतकी ऊँचाईमें और उसके अस्तित्वमें कभी बाधा आती नहीं। इतने विवेचनसे स्पष्ट प्रतिपादित होता है कि मनुष्यके दृश्य जगत्की अपेक्षा अदृश्य जगत् अत्यधिक विशाल है और इन दोनोंमें मेरु राई-जैसा अन्तर है।

देहका जन्म है, तो उसका मरण भी है। इसी तरह जब यह लोक विद्यमान है, तो परलोकका होना भी अनिवार्य है। परलोक यदि नहीं है तो यज्ञ-याग, पाठ-पूजा, श्राद्धादिकी आवश्यकता नहीं है और मूर्तिपूजा, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, कर्मफलका विधान भी निरर्थक है ! स्थूल देहधारियोंका जैसे इहलोक अर्थात् स्थूल जगत् है, वैसे ही सूक्ष्म देहधारियोंकी सूक्ष्म सृष्टि अर्थात् परलोक विद्यमान है। परलोक है तो परलोकविद्या भी हो सकती है; फिर परलोकविद्यावादी या उस विद्याके विशारद होनेमें शंका क्या ? परलोकविद्याद्वारा परलोकके निवासियोंके साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। तात्पर्य यह है कि परलोकविद्याके माध्यमसे वहाँके सूक्ष्म शरीरियोंसे वार्तालाप शक्य है, उनकी सहायताद्वारा इहलोकमें भौतिक और आध्यात्मिक लाभ अवश्य प्राप्त हो सकता है। परलोकविद्या कोई नया प्रपञ्च नहीं है। उसका तिरस्कार करनेवाला उस विद्याके लाभसे वञ्चित रहता है। परलोक-विद्यासे ही जीवका मरणोत्तर अस्तित्व, भूलोक छोड़कर उसका परलोकगमन, उससे बातचीत, परलोकमें जानेके विभिन्न मार्ग, परलोकके विभिन्न श्रेणीके निवासी, भूलोक तथा परलोकका परस्पर उपकारक सम्बन्ध, यहाँ किये गये कर्मोंके फल परलोकमें भोगनेकी शक्यता, परलोकसे भूलोकमें जीवका पुनर्जन्म होनेकी सम्भाव्यता इत्यादि महत्त्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश पड़ता है।

हर एक लोकके लिये सीमा निश्चित है। अपना यह ब्रह्माण्ड त्रिविक्रम विष्णुके तीन पैरोंसे व्याप्त है। सविता देवताके उदरमें सर्वलोक और सर्वभुवन रहते हैं। मरणोत्तर जीवके गमनकी यह मर्यादा है। परलोकगत जीवात्माओंमें विद्यमान विद्या, अविद्या तथा कर्मोंके संस्कार भिन्न-भिन्न होनेके कारण उनके उत्क्रमणके मार्ग भी पृथक्-पृथक् होते हैं। उनमें देवयान और पितृयाण—ये पुण्यशील लोगोंके दो प्रधान मार्ग हैं। ज्ञानीजन देवयान मार्गसे दिव्य लोकमें जाते हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग—ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोक माने गये हैं। सूक्ष्म शरीरी जीवात्माओंकी सद्गतिके लिये सर्व धर्मोंमें प्रार्थनाएँ की गयी हैं। इसीसे पता चलता है कि मरणोत्तर जीवन है, विविध लोक हैं और स्तुतिसे, भागवती कथासे, श्राद्धादिसे उन वासनादेहियोंका ऊर्ध्वगमन होता है।

हमलोगोंके मृत सम्बन्धी अपने कर्मोंके कारण स्वर्गमें, यमलोकमें, पातालमें—चाहे कहीं भी गये हों, उन्हें वापस बुलानेकी प्रार्थनाएँ ऋग्वेदमें हैं। जीव स्वरूपतः अमर्त्य होता हुआ मर्त्य शरीरके साथ आसक्तिवश रहता है और इसीलिये उसे परिच्छिन्न जीव बतलाया जाता है। वह यथासमय उच्च, नीच गति प्राप्त करता रहता है। स्थूल-शरीर मृत होते ही जीवात्माकी सूक्ष्म इन्द्रियाँ और प्राण आदि सत्रह तत्त्वोंवाले सूक्ष्म शरीरसहित निकल जाता है और वह परलोकमें लोकानुकूल देहसे व्यक्त रहता है और इहलोकके स्थूल देहियोंसे अव्यक्त रहता है। हमारा यह अनुभव है कि पृथ्वीके अन्तर्गत वातावरणके कई स्तर हैं और पाँचवें लोकसे परलोकवासी किलकादि करके आवाहन करनेपर आ सकते हैं और उनसे वार्तालाप होता है। पृथ्वीके चारों ओर वातावरण विद्यमान है। स्वकर्मानुसार परलोक-वासी जीवात्मा वातावरणके पहले, दूसरे, तीसरे इत्यादि विभागमें घूमते हैं। श्राद्ध, सत्कर्मसमर्पण आदिके द्वारा उनका उच्च वातावरणमें गमन भी होता है। ईश्वर-तत्त्व-प्रधान सूक्ष्मशरीरी जीवात्मा कभी-कभी अपनी इच्छा-शक्तिसे योग्य माध्यमसे ओजस्का आकर्षण करके जीवित मनुष्यको दर्शन भी दे सकता है, पीडा भी पहुँचा सकता है। ऐसे दुष्ट सूक्ष्मशरीरियोंकी शान्ति भी शक्य है।

मृत व्यक्तियोंको अपने विरह-व्याकुल सम्बन्धियोंकी ओर स्वाभाविक आकर्षण रहता है। पृथ्वीके नाशवान् पदार्थोंमें प्रीतिवाले जीवात्माओंकी ऊर्ध्वगति होनेकी सम्भावना बहुत कम है। उन प्रिय चीजोंके चुम्बकत्वसे वे जीवात्मा भूमिकी ओर आकृष्ट रहते हैं और उसी वातावरणमें संस्कारवश घूमते हैं। ऐसे परलोकवासियोंमें निकृष्ट कोटिके भूत, प्रेत, पिशाच, चुडैल, डाकिनी, शाकिनी, खवीस, ब्रह्मराक्षस, वीर इत्यादि होते हैं। इनमें भी प्रकृतिके अनुसार भिन्नता मालूम पड़ती है। स्थूल देहधारियोंको ये पीडा पहुँचाते हैं, दुःख देते हैं। स्थूल मानव-समाजको त्रासदायक ऐसे अतृप्त वासनादेहियोंको भगानेके लिये, उनकी शान्तिके लिये, उनके त्राससे मानवको मुक्त करनेके लिये मन्त्र, उपाय, प्रयोग, तन्त्र-विधानादि आर्यशास्त्रमें विद्यमान हैं। ये निकृष्ट सूक्ष्मशरीरी हर एकको परेशान नहीं कर सकते। उस परेशानीमें ऋणानुबन्ध अवश्य होता है। किसको, कब, कौन, कैसे दुःख देगा, निश्चित नहीं है। हमारा यह निजी अनुभव है कि परलोकविद्याके माध्यमसे पितर लोग, नागदेवता, धनरक्षक जीवात्मा, मृत स्नेहीजन तथा अन्य दैवी जीवात्माओं (पीर, वीर, कुल-देवी, माताजी इत्यादि) के साथ संकल्पात्मक आकर्षण प्रयोगद्वारा सम्बन्ध स्थापित करके वैज्ञानिक रीतिसे वार्तालाप कर सकते हैं और इस तरहसे हमें प्रश्नोत्तरद्वारा संतोष भी मिलता है। यह परलोक-विद्याकी सिद्धि सतत साधनामय जीवनसे ही सम्भावित है। यदि असंतोष रहे, तब भी प्रयोगसे ऊबना नहीं चाहिये। केवल भूत-प्रेत-पिशाचादिको खींचनेकी विद्याको ही परलोक-विद्या कहना सर्वथा क्षुद्र, एकांगी, अन्यायी और अवैज्ञानिक है। हर एक धर्मावलम्बी अपने-अपने ढंगसे पितृपूजा करता है, भोजनादि खिलाता है। पूजाका प्रकार अलग हो सकता है। अन्त्येष्टि श्राद्ध, पक्ष-श्राद्ध, देवतोपासना, यज्ञ-याग, वेदोक्त संस्कार और विविध विधि-निषेधादि वस्तुतः परलोकविद्याके ही महत्त्वपूर्ण विभाग हैं। हम स्थूल देहधारी लोग अपने पितरोंको यथार्थ विधिसे तृप्त करते रहें तो वे हमें मङ्गलमय आशीर्वादोंसे संतति, सम्पत्ति, आयुष्य, आरोग्यादि देकर सुखी करते हैं। गीता भी इस बातमें सहमत है। तभी तो ऐसी यथार्थ उचित परम्परा वैदिककालसे यहाँ चालू है। इस तरह इहलोक और परलोकका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

परलोकका अर्थ अनेक मृत जीवात्माओंका निवास-स्थान नहीं है। परलोक भी कई प्रकारके हैं। अनेक जीव अपने प्राणमय, मनोमय, लिंगदेहसे—स्वशक्तिके अनुसार प्राप्त परलोकमें रहकर संस्कारवश अपनी सूक्ष्म प्रवृत्ति करते हैं। देहोपाधिके कारण अज्ञानी आसक्ति-परायण जीवात्माको मृत्युका भय लगता है। वास्तवमें आत्माकी मृत्यु नहीं है। आत्म-विस्मृतिके कारण मरणकी भीषण कल्पना है। ज्ञात प्रदेशसे अज्ञात प्रदेशमें जानेवाले स्वकर्माधीन कतिपय जीवात्मा मृत्युके बाद बहुत कालतक निद्रित रहते हैं। निद्रित और मूर्च्छित जीवात्माका जवाब सत्यासत्यमिश्रित मिलता है। उस मूर्च्छावस्थाको दूर करनेके लिये इहलोकमें तत्सम्बन्धी दान-धर्म-पुण्यकर्म-श्राद्धादिका आयोजन किया जाता है। पश्चात् सूक्ष्मदेहमें जागृति आती है और उस जीवात्माकी परलोकमें भी सूक्ष्म शुभ प्रवृत्ति होती है।

कभी-कभी सूक्ष्मदेहधारी जाग्रत् जीवात्मा भूलोकवासी स्थूल शरीरवालेके पास सकारण आते हैं। इस आकर्षणमें प्रेम, वैर, पूर्व ऋणानुबन्ध आदि कारण हो सकते हैं।

विभिन्न जीवात्मा अपनी सत्-असत् भावनाके अनुसार परलोकमें अथवा पुनर्जन्म होनेपर इस भूलोकपर एकत्रित होकर अपने अनुकूल-प्रतिकूल सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इससे मानना पड़ा है कि भूलोकके समान ही परलोकके अनेक जीवोंका जाग्रत्के समान व्यवहार सम्भव है। मरणोत्तर स्थितिका उत्तम प्रमाण परलोकविद्या ही है। परलोक और आधिदैवत जगत् माने बिना ऐहिक बहुत-से व्यवहारोंका स्पष्टीकरण नहीं होता और विभिन्न कर्मोंकी सफलता ज्ञात नहीं होती। साथ ही देव-देवी, क्षेत्रपाल, निसर्गदेवता, नागदेवता, पितर, मृत जीवात्माओंके माध्यम, यक्ष, भैरव, विद्याधर, किन्नर, गन्धर्व, वैताल, वीर इत्यादि पारलौकिक व्यक्तियोंकी प्रसन्नता और शुभ व्यवहार असम्भावित हो जाता है और मन्त्र-तन्त्र-विज्ञान, दैवी-उपासना और अनुष्ठानादि भी मिथ्या हो जाते हैं। सब धर्मोंमें परलोक माने गये हैं। परलोक होनेसे ही सूक्ष्मशरीरियोंका मूर्तरूपमें यहाँ दिखायी पड़ना, बोलना, सुनना, उनका संदेश लिखाना, उनके फोटो ले सकना, मृत व्यक्तियोंकी ओरसे अनेक आश्चर्ययुक्त चेष्टाएँ जो इस लोकमें होती हैं, सम्भावित हैं। सूक्ष्मशरीरी जीवात्माओंमें पूर्वदेह-सम्बन्धी प्रेम, वैर, ऋण, हत्या, मोह, माया-ममताके सुषुप्त संस्कार मृत्युके अनन्तर भी जाग्रत् होते हैं। परलोकविद्यासे सम्बन्धित इस सिद्धान्तका अनुभव कई लोगोंको है। इसीलिये सकल धर्मोंकी पितृपूजा या श्राद्धादि विधियोंकी सफलता सिद्ध होती है। भूतसंचारद्वारा भी मरणोत्तर पूर्वस्मृति सिद्ध होती है। यदि परलोक नहीं है तो दशरथ राजाके मरणके बाद उनके सूक्ष्मशरीरको सीताजी कैसे देख सकती थीं और श्रीराम भी इन्द्रके साथ आये हुए अपने परलोकवासी पिताजीको कैसे देख सकते थे, उनसे बातचीत भी कैसे सम्भावित थी? मृत्युके अनन्तर जीवन है तभी तो पण्डित श्रीमण्डनमिश्र और एकनाथ-जैसे कई भक्तोंके वहाँ परलोकगत पितर लोग भोजन लेने आये थे।

अब संक्षेपमें साररूप शरीर, आत्मा, अनात्मा, जीवात्मा, परमात्मा, स्थूल-सूक्ष्म-कारण देह, परलोक, मरणोत्तर जीवन, श्राद्ध, अन्तरिक्ष जगत्सम्बन्धी लिखकर परलोक-विद्याभ्यासी जनोंसे विदा लेंगे।

माता-पितासे प्राप्त हुआ हमारा शरीर पृथिवी आदि पञ्चीकृत भूतोंसे उत्पन्न हुआ है। यह शरीर पूर्वोपार्जित पाप-पुण्यमय कर्मोंके कारण जन्म-मृत्युवाला है। इसी देहसे मायामय संसारके सुख-दुःखादि भोगने पड़ते हैं। इस स्थूल देहको आत्माकी स्थूल उपाधि कहते हैं। दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि—इन सत्रह अङ्गोंसे युक्त सूक्ष्मशरीर आत्माका दूसरा देह है। भोक्ताके सुख-दुःखादि अनुभवका वही साधन है। उसीके वासना-देह, यातनादेह, लिंगदेह, आतिवाहिक शरीर आदि कई भेद हैं। इन दो देहोंके अतिरिक्त अनादि और अनिर्वचनीय मायापूर्ण कारणशरीर जीवात्माका तीसरा देह है। आत्मा सर्वदा सुख-स्वरूप, अजन्मा, अद्वितीय होनेपर भी अध्यासके कारण उसे दुःखमय संसारकी प्रतीति होती है। अध्यासके कारण ही भ्रमसे अन्यमें अन्यका भान होता है। अनादि अविद्यासे उत्पन्न हुई बुद्धिमें प्रतिबिम्बित यह चेतनका प्रकाश ही 'जीव' कहलाता है। चेतन तीन प्रकारका है—एक बुद्धिमें व्याप्त है, दूसरा सर्वत्र परिपूर्ण है और तीसरा, जो बुद्धिमें प्रतिबिम्बित होता है। चिदाभासके सहित बुद्धि ही सब कार्य करती है; परंतु अज्ञानी लोग भ्रान्तिवश साक्षी आत्माको कर्ता-भोक्ता मानकर संसारके आवागमनके चक्रमें फँस जाते हैं। वास्तवमें बुद्धिके साक्षीरूपसे आत्मा उससे पृथक् है। अविद्याजन्य बुद्धि और आत्माका तादात्म्य हो जानेसे आत्माकी चेतनता अनात्मबुद्धि आदिमें और बुद्धि आदिकी जडता आत्मामें प्रतीत होने लगती है। इसलिये अध्यासवश बुद्धिसे लेकर शरीरपर्यन्त अनात्म वस्तुओंको ही आत्मा मानने लगते हैं और पूर्वजन्मोंके शुभाशुभ संस्कार अध्यासमें ओत-प्रोत होनेसे मायाधीन जीवात्माको प्रेरणा देकर 'अहं ब्रह्म' की प्रतीतिमें विघ्न खड़ा करते हैं। इसीलिये जीवात्माको अपने परमात्मस्वरूपका भान नहीं होता।

इस प्रकार मायादास जीव स्वकर्मानुसार मृत्युके अनन्तर अन्तरिक्षके कई विभागोंमें सूक्ष्मरूपसे सैकड़ों वर्षतक घूमा करते हैं। पचीस, पचास, सौ, दो सौ, सात सौ, हजार वर्ष—पहले देह छोड़नेवालोंसे प्राप्त परलोक-विद्याद्वारा सम्पर्क स्थापित तथा वार्तालाप किया जा सकता है। इससे ज्ञात है कि उन वायुतत्त्व-प्रधान सूक्ष्मशरीरियोंको दीर्घकालतक घूमना पड़ता है और किसका कब, कहाँ जन्म होगा, पता नहीं लगता। उनमें कई सुखी, कई त्यागी, परोपकारी, तेजस्वी, शूर और भजनमस्त भी

होते हैं। ये सब पीड़ाप्राप्त भूत-प्रेत नहीं होते, परंतु संसारियोंके पीड़ा-दुःख दूर करनेवाले सच्चे प्रभुभक्त होते हैं। ईश्वरीय ज्ञानके बिना जीवका उद्धार अशक्य ही है। अनन्त सृष्टियाँ हैं, अज्ञानी जीव भी अनेक विद्यमान हैं। ऐसे वासनात्मक अज्ञानी जीवोंका मरणोत्तर जीवन अवश्य होता है और मरणोत्तर जीवन होनेसे अन्तरिक्षमें उनका स्वशक्तिके अनुसार स्थान, गति, जीवन, स्वभाव, शक्तियाँ, कार्यक्षेत्रादि होते हैं। भूलोकवासियोंसे उनका सम्बन्ध परलोकविद्या द्वारा स्थापित किया जाता है। मृत्युके अनन्तर कई परलोकगत जीवात्मा अपने अशुभ कर्मोंके कारण कई सालतक मूर्च्छित दशामें भी रहते हैं, इसलिये उनके संदेशमें कुछ भी तथ्य नहीं होता। शक्तिशाली जीवात्माओंसे और दैवीशक्तियोंसे शुभ हितकारी संदेश प्राप्त किये जाते हैं, यह हमारा अनुभव है।

जीवात्माकी मरणोत्तर अवस्था—आकर्षण-सिद्धान्त

(लेखक—प्रा० कुमुद विद्यालङ्कार)

क्षर पुरुषका उत्क्रमण

आत्माके समूहमें सूर्यका रस-रूप विज्ञानात्मा वैसे असंग माना गया है, फिर भी उसका मृत्युभाग आसक्तियुक्त है और उसमें प्रज्ञानात्मा भी निबद्ध है। यही कारण है, यह विज्ञानात्मा शरीरमें रहते हुए दुःख-कष्टका ही अनुभव नहीं करता, कितनी ही मलिनताओंमें सनकर स्वयं भी मलिन पड़ जाता है। जबतक प्राणीका जीवन रहता है तबतक यह विज्ञानात्मा शरीरके साथ कलुषित और अल्पज्ञ बना रहता है; किंतु मृत्युके समय यह अपने अङ्गोंके बन्धन तोड़कर प्रज्ञानात्मासहित सभी इन्द्रियोंको साथ लिये हृदयके अग्र भागमें आ जाता है। उस समय शरीरके किसी अङ्गमें उसका पता नहीं चलता। न वह बोलता, न सुनता है, केवल हृदयकी धड़कन उसकी स्थिति बताती है। निश्चय ही उस समय विज्ञानात्मा और प्रज्ञानात्मासहित मुख्य प्राणात्मा अपनी सम्पूर्ण कलाओंके साथ हृदयमें ही अपना व्यापार करता है। यही कारण है, मरनेवालेके हृदयमें मरनेसे पूर्वतक ज्ञान बना रहता है। उसी ज्ञानप्रकाशके साथ सभी इन्द्रियों तथा प्राणोंको समेटे मुख्य प्राणात्मा ब्रह्मरन्ध्रसे निकलता है। यदि विज्ञानसे संयुक्त प्रज्ञानात्मामें पाप और दुर्वासनाएँ भरी हैं तो उनकी मात्राके अनुसार विज्ञानमय प्राणात्माको नीचेकी ओर झुक जाना पड़ता है। यही कारण है इसे कभी-कभी ब्रह्मरन्ध्रके अतिरिक्त आँख और मुँह आदि तथा और भी नीचेके मार्गसे निकलते देखा जाता है। मृत्युके समय जिस अङ्गसे प्राणात्माका उत्क्रमण होता है, उस अङ्गमें विकृति आ जाती है। यहाँ यह स्मरणीय है कि उत्क्रमित प्राणात्मामें सभी ज्ञानेन्द्रिय, सभी कर्मेन्द्रिय, मुख्य प्राणात्मा, विज्ञानात्मा और प्रज्ञानात्मा तो उत्क्रमण करते ही हैं, साथ ही भूतोंके अनुशय भी समवेतरूपमें उत्क्रमित होते हैं। स्वप्नकालमें जितना बोध प्राणीको रहता है, उतना ही बोध उत्क्रमणके पश्चात् भी रहता है।

इस प्रकार शरीरको छोड़कर निकले हुए व्यावहारिक आत्माओंका समूह कृष्ण-शुक्ल और उत्पत्ति-विनाशमार्गपर अग्रसर होता है। इन प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, विज्ञानात्मा और महान् आत्माके समूहको ही सूक्ष्म शरीरके नामसे पुकारा जाता है। यही देवचिति-रूप क्षर पुरुषकी कला है। इनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच प्राणके अतिरिक्त मन और बुद्धि—ये सत्रह तत्त्व सम्मिलित रहते हैं।

जो हो, यहाँ विचारणीय विषय इनकी गति है—आखिर इन्हें जाना कहाँ है? इन्हें प्रतिपल कौन आकर्षण-गति देता रहता है?

सजातीय आकर्षण

हम वैज्ञानिक प्रक्रियासे विचार करें तो सजातीय आकर्षण सिद्धान्त ही सामने आता है। व्यष्टि सदा समष्टिकी ओर बढ़ता है। सूक्ष्म शरीरके सत्रह तत्त्वोंमें मन प्रधान है और वह चन्द्रमाका अंश है। अतः चन्द्रमाके आकर्षणमें वह चन्द्रलोककी ओर स्वभावसे बढ़ेगा और कृष्ण मार्ग अपनायेगा। वही दिव्य पितरोंका लोक है, वही पितृनिवास है। प्रथमतः मृत प्राणीकी पितृलोक-गति ही सिद्ध होती है किंतु यदि मनकी प्रधानताको हटाकर बुद्धि-ज्ञान उसपर हावी हो जाय तो बुद्धि-तत्त्व सूर्यका आकर्षण सामने आ

जायगा। योगी, तपस्वी किंवा प्रबल साधक विज्ञानात्माको विकसित कर सूर्यमण्डलकी ओर गति अपना सकते हैं। सूर्यमण्डल देवप्राणोंकी समष्टि है और शाश्वत प्रकाशमान है, इसीलिये इसे शुक्लमार्ग कहते हैं।

इन दो ऊर्ध्व मार्गोंके अतिरिक्त भूमि-सम्बन्धको लेकर तीसरा मार्ग उत्पत्ति-विनाश मार्ग है। वेद इसे अधोमार्गकी संज्ञा देकर इसकी स्वीकृति नहीं देते। वे स्पष्ट उद्घोष करते हैं—

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहन्देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
(ऋ० १०।८८।१५)

'सूर्य पिता और पृथ्वी माताके बीच जहाँ भी और जो कुछ भी है, वह सारा विश्व यदि पृथ्वीको छोड़कर जाय तो उसके लिये मैंने दो मार्ग ही सुने हैं। एक पितरोंका और दूसरा देवोंका अर्थात् कृष्ण और शुक्ल—ये दो ही मार्ग मरणधर्मा जीवोंके लिये निश्चित हैं।'

फिर भी पृथ्वीके पदार्थ धन, पशु, गृह आदिमें ही जिसका मन आकर्षित हो जाय, जिसमें मानव-जीवन भोगनेकी अतृप्ति बनी रहे, उसे निश्चय ही शुक्ल अथवा कृष्णमार्गकी प्राप्ति असम्भव हो जायगी। भूमिके पदार्थोंकी वासना प्रबल होनेके कारण बुद्धिका विनाश तो होता ही है, मनकी शक्ति भी शिथिल पड़ जाती है। 'जायस्व म्रियस्व'का फेरा फिरसे सामने आ जाता है। यही कारण है, मुमूर्षुके समीप भूमिसे मोह पैदा करानेवाली कोई बात नहीं कही जाती।

तृतीय मार्ग ग्रहण करनेके समय भी यदि मुख्य प्राणात्मा किसी प्रकार 'तदर्थ प्राण-संस्थान'की अवस्था प्राप्त कर ले तो सर्वथा नवीन दृश्य उपस्थित हो जायगा। आकर्षण यहीं प्रत्यभिज्ञा (Recognition) में बदल जाता है। पाप और दुर्वासनाओंके अन्धकारमें छिपा उसका उपास्य परम ज्योतिरूपमें उसके सम्मुख आ जाता है। आसक्ति ही भक्ति बन जाती है।

चराचर विश्वमें परमात्माका रूप देखनेवाले, सगुणरूपके उपासक संत तुलसी भूमिसम्बन्धसे दूर नहीं भागते। कृष्ण और शुक्ल मार्गका पर्याप्त ज्ञान रखते हुए भी वे मुक्तिके लिये उन मार्गोंपर नहीं बढ़ते। उनके लिये 'राम'को साकेत छोड़कर धरतीपर उतरना पड़ता है।

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

सीय राम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

उन्होंने अपनी अनन्यताको सामने रखते हुए स्पष्ट ही कहा है—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो॥
करम उपासन ग्यान बेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहि तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो॥

इस विषयमें संत तुलसी भगवान् शंकरको अपना गुरु मानते हैं। उनसे यह रहस्य छिपा नहीं है कि भगवान् शंकर काशी-मुक्तिमें कौन-सी प्रक्रिया अपनाते हैं। दो अक्षरोंका तारक मन्त्र 'राम' लाख-लाख प्राणियोंको मुक्त जीवन प्रदान करता है। यदि उन जीवोंको भगवान् शंकर क्रमिक मुक्तिका मार्ग बताते, कृष्ण और शुक्ल मार्गपर बढ़नेकी प्रेरणा देते तो एकका भी उद्धार कठिन पड़ता। मुमूर्षुके कानोंमें भगवान् शंकरका तारक मन्त्र मुख्य प्राणात्माको 'तदर्थ प्राण-संस्थान'की अवस्थामें ला देता है। आकर्षणसे ऊपर प्रत्यभिज्ञामें 'राम' उसकी आँखोंके सम्मुख साकार हो जाते हैं। शब्द-ब्रह्मसे परब्रह्मका विनिमय हो जाता है।

यह बतानेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी कि सूक्ष्मशरीरकी इन सभी अवस्थाओंमें आकर्षण सिद्धान्त समान रूपसे काम करता है। कृष्ण-शुक्ल मार्ग और 'जायस्व म्रियस्व' मार्ग ही नहीं, 'तदर्थ प्राण-संस्थान'की अवस्थामें पहुँचानेवाला भी सजातीय आकर्षण ही है। सभी आत्माओंमें अभेदके संस्कार वर्तमान रहते हैं। भेदका अभेदकी दिशामें आकर्षण कभी अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

आकर्षणके विरुद्ध आकर्षण

शेषमें आकर्षणके विरुद्ध आकर्षण और यथावत् स्थितिकी बात रह जाती है। जीवात्माके सूक्ष्म शरीरके सामने उत्क्रमण-कालमें सजातीय आकर्षणके विरुद्ध उद्वेगात्मक आकर्षणसे शक्ति-क्षीणता आ सकती है, देवचितिरूप क्षर पुरुषको राग-द्वेषका आधिक्य उसे यथावत् स्थितिमें रहनेको विवश कर सकता है। इन स्थितियोंमें वायुतत्त्वकी प्रबलता सामने आयेगी और वह जीवात्मा वायुमें ही इतस्ततः भ्रमण करने लगेगा। वायवीय शरीर प्रेत-

पिशाचादिका होता है अतः उन्हें, हमें प्रेत-पिशाचरूपमें स्वीकार करना पड़ेगा।

भारतीय संस्कृतिमें श्राद्धकी उपपत्ति प्रेत-पिशाच तथा पितृ-जीवनको मान्यता देने और उस जीवनसे उन्हें ऊपर उठानेके लिये ही स्वीकृत हुई है। विशेषकर कृष्ण मार्गसे उत्क्रमण करनेवाले आत्माओंको वेदकी आज्ञाके अनुसार चावल आदिके पिण्डोंमेंसे सोम भाग पहुँचाकर श्रद्धारूप अनुशयकी पुष्टि ही गात्र-पिण्डका उद्देश्य है। एक वेद-मन्त्र है—

यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं
पितृलोकं गमयं जातवेदाः।
तद् व एतत् पुनराप्याययामि
साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम्॥
(अथर्व० १८।४।६४)

'हे पितृलोकके पथिको! अग्निने तुम्हारा एक शरीर जलाकर तुमसे छीन लिया है और सूक्ष्मशरीरसे तुम्हें पितृलोक भेजा है। मैं तुम्हारे उस छीने हुए शरीरको पुनर्वार पुष्ट कर रहा हूँ। तुम साङ्ग बनकर स्वर्गमें आनन्द करो।'

हाँ, तपस्वी, संन्यासी आदि, जो शुक्ल मार्गसे उत्क्रमण करते हैं, उन्हें सोमद्वारा इस प्रकार शरीर-पुष्टिकी आवश्यकता नहीं होती। वे स्वयं अग्निरूप होते हैं, उनपर सूर्यके आकर्षणको कोई भौतिक व्यवधान रोक नहीं सकता। यही कारण है ऐसे प्राणियोंके लिये गात्र-पिण्डका विधान नहीं है। सामान्य उत्क्रमित आत्माके लिये, जहाँतक भू-वायुका प्रभाव है, शक्ति-प्रदानार्थ सोमकी पुष्टि आवश्यक है। दस दिनोंमें आत्मा इस वायु-क्षेत्रको पारकर पितृलोकके मार्गपर अग्रसर हो जाता है। यही कारण है कि दस दिनोंतक श्राद्धकी पुष्टि-क्रिया चलती है।

प्रेत-जीवन सत्य है

जहाँतक प्रेत-जीवनके अस्तित्वका प्रश्न है, श्रीमद्भागवत महापुराण डंकेकी चोट अपनी स्वीकृति देता है। अन्यान्य भारतीय ग्रन्थोंमें भी प्रेत-जीवनका वर्णन प्रसंगवश मिलता ही है। बौद्ध और जैन धर्मके कथा-सूत्रोंमें प्रेत-पिशाच बहुलतासे दर्शित होते हैं। मात्र लगभग चार सौ वर्षों पूर्व संत तुलसीदासके द्वारा कविवर केशव अपने प्रेत-जीवनसे मुक्त होते हैं। प्रेत-जीवन-सम्बन्धी साक्ष्योंकी श्रृंखला इतनी लंबी और अविच्छिन्न है कि सहजमें संशयवादियोंके द्वारा उन्हें झुठलाना कठिन है।

और तो और, आजसे केवल तीन दशक पूर्व लन्दनके प्रमुख समाचारपत्रोंमें कैप्टेन डेविडकी एक घटना छपी थी। किस प्रकार उसे चीनसे लौटनेके बाद, सुदूर मिस्रमें एक छायापुरुषकी भयावनी आकृति उसके चतुर्दिक् घूमती दिखायी पड़ती थी। उस अनजानी आकृतिसे डेविड सर्वथा परेशान हो उठा था। महीनेभरके बाद तो वह सर्वथा मरणासन्न अवस्थामें पहुँच गया। डाक्टर लाख प्रयासके बाद भी किसी रोगका निर्णय नहीं दे सके। डेविडकी पत्नी अपने पतिकी अवस्थापर स्वभावसे खिन्न रहने लगी। एक दिन उसे किसी परिचित महिलाने समीपके ही गाँवमें रहनेवाली जादूगरनी बुढ़िया फातिमाका पता बताया। डेविडकी पत्नी किसी प्रकार फातिमाकी झोंपड़ी तक पहुँची। उसने डेविडके साथ घटनेवाली घटनाका यथातथ्य वर्णन फातिमाको सुनाया। वहीं बालूपर उल्टी-सीधी दो चार लकीरें खींचनेके बाद फातिमाने पूछा—'क्या तुम्हारा पति चीन देशसे कोई कामदार कोट ले आया है?' डेविडकी पत्नीने स्वीकृतिके स्वरमें कहा—'हाँ, कमरेमें एक कामदार कोट खूँटीपर टँगा हुआ है, उसे मेरे पतिने अपने चीन-प्रवासमें नीलाम खरीदा था।' फिर तो उसे तुरंत ही फातिमाका आश्वासन मिला—'मैं साथ चलती हूँ, भय मत करो। तुम्हारे पतिकी जीवन-रक्षा होगी।'

फातिमा डेविडकी पत्नीके साथ फौजी क्वार्टर तक आयी। खूँटीपरसे कोट उतारकर उसने डेविडको उसपर अनेक छोटे-छोटे अस्पष्ट खूनके धब्बे दिखाये और कहा—'यह कोट वहाँके राजवंशके एक प्रमुख सदस्यका है, मार्गमें उसकी हत्या कुछ डाकुओंके हाथों हुई। यह कोट उसे अत्यन्त प्रिय था, फलतः प्रेतात्माका सम्बन्ध मृत्युके पश्चात् भी उससे बना रहा। तुम्हें जिस अजनबीकी छाया इधर-उधर घूमती दिखायी पड़ी, वह उसी चीनीकी छाया थी। स्थूल कोटको सूक्ष्म आत्मा अपने अधिकारमें नहीं ला सका तो उसके पीछे-पीछे स्वयं मिस्रतक आनेको विवश हुआ।'

उपचार रूपमें बुढ़ियाने उस कोटको वहीं प्रज्वलित अग्निमें डाल दिया। स्थूल कोट अब निराकार रूपमें

आ गया। कोटकी परिसमाप्तिके साथ फिर कभी डेविडको अनजानी छायाकी झलक नहीं मिली।

कोटके साथ मृतात्माका उत्कट मोह ही उसे चीनसे मिस्र खींच लाया था, उसे प्रेतरूपमें भटका रहा था, इसपर अधिक विश्लेषणकी आवश्यकता नहीं।

यह स्पष्ट है कि जीवात्माका वस्तु-विशेषके प्रति उत्कट राग और तज्जनित उद्वेग ही उसे उत्क्रमण-मार्गपर नहीं बढ़ने देता, यथावत् रखता है और परम उद्वेगपूर्ण प्रेत-जीवन बितानेको बाध्य करता है। यदा-कदा श्रेष्ठ आत्माको भी इस चक्रमें पड़ते सुना गया है। हमारे परिवारकी ही एक सच्ची घटना है। पूज्य पिताजीकी एक विधवा बहिन थीं, सभी कोई उन्हें दीदीजी कहते थे। वे अत्यन्त सात्त्विक वृत्तिकी—दिन-रात पूजा-उपासनामें रत रहनेवाली साध्वी महिला थीं। परिवारके बच्चोंपर तो वे मातासे भी अधिक प्रेम रखती थीं। मृत्युके पश्चात् उनकी सद्गतिमें संदेहकी बात नहीं स्वीकार की जा सकती, किंतु लगता है बच्चोंके प्रति वह उत्कट आसक्ति तथा ममता मृत्युके पश्चात् भी उनके हृदयमें बनी रही। मृत्युके दो-तीन मास बाद ही प्रायः उनकी छायामूर्ति श्वेत वस्त्राच्छादित, इतस्ततः आँगनमें घूमती दर्शित होने लगी। उन्हें देखनेवाले परिवारके सदस्य उनके प्रति श्रद्धाभावमें मूक बन जाते थे। उनका इस प्रकार छाया-दर्शन विशेषकर उन्हीं दिनों होता था, जब परिवारका कोई शिशु रुग्ण हो जाता था। आश्चर्यकी बात यह होती थी कि आगमनके साथ रुग्ण शिशु अविलम्ब स्वास्थ्य-लाभ कर लेता था। मेरी माताजी कहा करती थीं कि दीदीजीका दर्शन सम्पूर्ण परिवारके लिये कल्याणकारक होता था।

पूरे दस वर्षोंतक उनका इस प्रकार छाया-दर्शन चला, फिर उनकी छाया किसीको कभी नहीं दिखायी पड़ी।

ऐसी घटनाएँ यत्र-तत्र-सर्वत्र घटती रहती हैं। हमें विस्तारमें नहीं जाना है।

भौतिक विज्ञानवादी इस तथ्यको जब अस्वीकार नहीं करते कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, एक-एक ग्रह, नक्षत्र आकर्षण-सिद्धान्तकी सीमामें कार्यशील हैं, तब आध्यात्मिक विज्ञानके सूक्ष्मजगत्में चलनेवाले आकर्षण-सिद्धान्तको अस्वीकार करनेका कोई कारण नहीं होना चाहिये। परमाणु-तत्त्वके अन्वेषकोंको प्राण-तत्त्वका भी अन्वेषण करना चाहिये। उन्हें उस समय सचमुच आनन्द मिलेगा जब कि वे अनुभव करेंगे—उनका आकर्षण-सिद्धान्त बाह्यजगत्से अधिक अन्तर्जगत्में क्रियाशील है।

समस्त गूढ़ रहस्योंके ज्ञाता आध्यात्मिक विज्ञानके प्रधानाचार्य भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥
(९।२५)

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
(८।५)

मांसाहारीको घोर नारकी यातना

मानव, पशु, पक्षी, लता, पादप, कीट, पतंग।
सबमें प्रभु नित बस रहे, सब ही उनके अंग॥
मांसाहारी मनुज ही, है हिंसाका मूल।
प्रभु पर करता चोट वह, जाता निज-हित भूल॥
घोर नारकी यातना मिलती उसे अपार।
नीच योनिमें दुःखसे करता हाहाकार॥
अतः किसी पर भी कभी करो नहीं आघात।
सबके हित-सुखकी सदा सोचो मनसे बात॥

आत्म-नियन्त्रणसे कल्याण

(लेखक—पं० श्रीजयकान्तजी झा)

गीतामें कहा गया है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

(२ । ६४-६५)

'जिसका अन्तःकरण अपने वशमें है, ऐसा राग-द्वेषसे रहित पुरुष अपने अधीन की हुई इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको भोगता हुआ प्रसाद (अन्तःकरणकी प्रसन्नता) को प्राप्त होता है और उस प्रसाद (प्रसन्नता) से सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है तथा उस प्रसन्नचित्तवाले पुरुषकी बुद्धि शीघ्र ही अच्छी तरह स्थिर हो जाती है ।'

आइये, गीताके उपर्युक्त श्लोकोंमें निहित भावोंसे सम्बन्धित कुछ प्रसङ्गोंपर विचार करें—

इन्द्रकी भेजी हुई उर्वशी नामकी परम सुन्दरी अप्सरा अर्जुनको विचलित करनेके लिये उनके पास जाती है और अपने हाव-भाव और संकेतोंसे उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न करती है । परंतु तपस्वी अर्जुनपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वे अविचलित भावसे अपनी निष्ठामें सुदृढ़ रहते हैं । अपने समस्त मूक उपायोंको आजमा लेनेके उपरान्त अन्तमें उर्वशी अर्जुनसे कहती है—

'अर्जुन ! क्या तुम मुझको नहीं देख रहे हो ?' अर्जुन उत्तर देते हैं—'देवि ! मैं तुम्हें देख रहा हूँ, तुम मुझे माता कुन्ती और माद्रीके रूपमें दीख पड़ रही हो ।'

मनकी ऐसी उच्चावस्था निरन्तर तप और आत्मसंयम-के अभ्याससे उत्पन्न होती है, भोगोंके अमर्यादित भोगसे वासनाओंकी वृद्धि, दुःख और बन्धन होता है । भोगोंका वास्तविक आनन्द उनमें लिप्त होनेसे नहीं, अपितु त्याग और संयमपूर्वक उनका मर्यादित उपभोग करनेसे प्राप्त होता है ।

बहुत-से व्यक्ति संयम और आत्म-नियन्त्रणकी कमीके कारण अपनी कठिनाइयों और शत्रुओंकी वृद्धि करते रहते हैं एवं जीवनके अन्तिम समयपर्यन्त उनसे छुटकारा पानेके लिये क्लेशमय संघर्षमें लगे रहते हैं, परंतु उन लोगोंसे कम बुद्धि और कम अनुकूल परिस्थितियोंवाले बहुत-से व्यक्ति अपने संतोष और मनकी शान्तिके बलपर अधिक सुखी पाये जाते हैं । सुखकी प्राप्तिके लिये बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं है, अपितु अपने भीतर ही सुखकी खोज करनी चाहिये । हमारे पास जो कुछ भी हो, उसीसे संतुष्ट रहते हुए आत्म-नियन्त्रणकी योग्यतामें अधिकाधिक वृद्धि करते रहनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

एक सेनापति अपने शौर्यके लिये बड़ा प्रसिद्ध था । युद्धभूमिमें अनेक गौरवपूर्ण विजय प्राप्त करनेके कारण उसके देशवासी उसपर अभिमान करते थे । एक बार एक प्रबल शत्रुको हराकर जब वह नगरको लौटा तो लोगोंने एक विशाल जुलूस निकालकर उसका अभिनन्दन किया । उस जुलूसमें एक सुन्दरी स्त्रीको उसने देखा और उसे उसकी दो आँखोंसे परास्त होते देर न लगी । वस्तुतः वीर वही होता है, जो अपने मन-इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करता है, इनपर अधिकार न रखनेवाला बड़े-से-बड़ा योद्धा और शूरवीर भी कायर एवं गुलाम रहता है ।

आर्यसमाजके प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वतीको महाराणा उदयपुरद्वारा लाखों रुपये वार्षिक आयवाले एकलिङ्ग मन्दिरके महन्तकी गद्दी आग्रहपूर्वक भेंट किये जानेपर महर्षि इसे अस्वीकार कर देते हैं और कहते हैं—'महाराणा ! मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँ या परमात्माकी ? परमात्माके आज्ञानुसार मानवजीवनको त्याग एवं संयमकी ओर ले जाना ही अभीष्ट है, वैभव एवं विलासके चक्करमें फँसकर अमूल्य जीवनको नष्ट करना तो परम मूर्खता है ।' यह सुनकर महाराणा निरुत्तर हो जाते हैं ।

उपर्युक्त प्रकारकी मानस स्थिति प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको बड़ा तप और त्याग करना पड़ता है । अपनी वासनाओंपर विजय प्राप्त करनी होती है और अपने शरीरको आत्माके अधीन करना पड़ता है, अपने स्वार्थको परमार्थपर न्योछावर करना होता है और अपने-आपको माया, मोह और प्रलोभनोंसे ऊपर रखना होता है तथा काम, क्रोध, मोह, लोभके कुत्सित प्रभावोंसे अपनेको बचाना पड़ता है ।

इस प्रकारके आत्म-नियन्त्रणसे मनुष्यके व्यक्तित्वमें आकर्षण, वाणीमें प्रभाव, कर्ममें सौष्ठव और चरित्रमें बल एवं सौन्दर्य होनेके कारण उसका प्रभाव सभीके ऊपर आकर्षक ढंगसे पड़ता है। संसारमें उच्च जीवनकी ओर ले जानेवाली जो अव्यक्त प्रगति होती है, उसमें सर्वाधिक योग आत्मसंयमी, ज्ञानवान् और सत्कर्मियोंका ही होता है। आत्मसंयमी और आत्मविजयी पुरुष ही प्रत्येक पापपूर्ण कर्मसे लोहा लेता है। वह प्रत्येक बुरे विचारको मनमें उठनेसे और प्रत्येक बुरे शब्दको वाणीपर आनेसे रोक देता है, एवं निरन्तर प्रत्येक पवित्र और उच्च भावनाको प्रोत्साहित करता रहता है।

भगवान् श्रीराम राज्याभिषेककी तैयारीमें थे। उसी समय वे महाराज दशरथके महलमें बुला लिये जाते हैं और रानी कैकेयीद्वारा उन्हें वनगमनका आदेश सुना दिया जाता है। परंतु भगवान् रामने अपने हृदयमें जिस साम्राज्यकी सृष्टि कर रक्खी थी, उसकी तुलनामें अयोध्याका पार्थिव साम्राज्य नगण्य था। उन्होंने धैर्य और शान्तिके साथ उस आज्ञाको सुना। उनके भाइयोंको रोष आया, माताओंने विलाप किया, राजमहल और नगरमें शोक छा गया। परंतु इतना सब होनेपर भी श्रीराम सर्वथा अविचल रहे एवं सबको सान्त्वना देते हुए वे प्रसन्न मनसे वनको चले गये। यद्यपि राजा दशरथ और रानी कैकेयीको बहुत बुरा-भला कहा गया, परंतु भगवान् श्रीरामने अपने आचरणसे यह दिखला दिया कि वे वासनाओं और मनोविकारोंके दास न थे। अपने ऊपर उनका पूर्ण अधिकार था। उनकी इच्छाएँ उनकी परम पवित्र सद्बुद्धिके अधीन थीं। दुःखको हँसते हुए सहन करने, आपत्तियोंपर विजय प्राप्त करने, हर्ष और शोकमें एकरस रहने, भय, आतङ्क और घृणासे ऊपर रहकर अपने शुभ संकल्पोंपर डटे रहनेके कारण वे बिना मुकुट पहने हुए भी सम्राटोंके सम्राट् थे।

यदि मानव शान्तचित्तसे सोच-विचारकर अपनेको संयमित कर ले तो वह अपना और जगत्—दोनोंका कल्याण कर सकता है। बहुत दूर ज्ञान-विज्ञानकी बातोंकी ओर न जाकर अपने शरीरस्थ तत्त्वोंपर ही विचार करें तो हमें मालूम होगा कि अन्तःकरण-चतुष्टयमें संकल्प-विकल्पात्मक मन है। मनकी गति अत्यन्त चञ्चल मानी जाती है। अर्जुन-जैसा पराक्रमी योद्धा भी मनके निग्रहमें हताश-सा मालूम होता है। सद्गुरु श्रीतेगबहादुरजी महाराजने भी अपनी अनुभूतियोंके आधारपर लिखा है—

साधो ! इह मन गहियो न जाई।
चंचल तृष्णा संग बसत है, याते थिर न रहाई॥

चञ्चल मन ही सभी अनर्थोंका एकमात्र कारण है। मनके सहयोगसे ही सारी इन्द्रियाँ प्रवृत्त होती हैं। स्वतन्त्र इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति किसी भी विषयमें हो ही नहीं सकती। जिस इन्द्रियकी मनके साथ एकरूपता होती है, वही इन्द्रिय स्व-ग्राह्य विषयकी ग्राहक हो जाती है। जिस इन्द्रियका मनके साथ सम्बन्ध नहीं होता, वह इन्द्रिय विषय-संनिहित होनेपर भी ग्रहण नहीं कर सकती। इन्द्रियोंके द्वारा ही मन लौकिक बाह्य पदार्थोंको जानता है—ज्ञान प्राप्त करता है, फिर कल्पना करता है, तत्पश्चात् उसकी प्राप्तिका संकल्प करता है। प्राप्त करनेमें अत्यन्त अनर्थ तथा क्लेशादि होने लगते हैं। मनुष्य विवेक-विचारहीन होकर अविद्या-अस्मिता, राग-द्वेष-अभिनिवेशरूप पञ्च क्लेशोंमें आबद्ध हो भयानक विपत्तियों एवं आधि-व्याधियोंसे पीड़ित होता हुआ मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार मानव-जीवन प्राप्त करके भी वह कुछ कर नहीं पाता। अतः मानसिक नियन्त्रण रखनेसे ही इन्द्रियाँ स्वयं वशवर्तिनी हो जाती हैं एवं मनुष्य वह आनन्द प्राप्त करता है जो भोग-लिप्सामें फँसे हुए बड़े-से-बड़े सम्राट्को भी नसीब नहीं होता। वे आत्मविजयी पुरुष धन्य हैं, जो संसारके सुधार और सेवामें निरत रहते हुए अपने सदाचरण तथा सत्प्रयत्नोंसे समाजको स्वस्थ बनाते और उसकी विचारधारामें मूल-भूत परिवर्तन करके समयके प्रवाहको बदलनेमें भी उल्लेखनीय योग देते हैं।

आत्म-नियन्त्रणद्वारा आनन्द प्राप्त करनेका वास्तविक उद्गम हमारा हृदय है। प्रसन्नताकी जड़ हमारे अन्तः-स्थलमें है। बाह्यजगत्की नाना विलास या आरामकी वस्तुओंमें आनन्द नहीं है। वह तो हमारे अन्तर्जगत्की क्रिया है। आनन्दका उद्रेक हमारे आन्तरिक प्रदेशसे होता है। आनन्द किसी सुदूर उद्देश्यमें निहित नहीं है। आनन्दमें सीमा बन्धनका क्रम नहीं है। आत्मनियन्त्रित होनेपर हमें अनुभव होगा कि हमारे जीवनमें अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जो रुपये-पैसेसे नहीं खरीदी जा सकतीं। प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, सौहार्द, समता इत्यादि

वे दैवी सम्पत्तियाँ हैं, जिनको हम किसी मूल्यपर नहीं खरीद सकते। ये सब हमारे हृदयमें निवास करती हैं और इन्हें हम प्रचुरतासे दूसरोंको दान कर सकते हैं। इनके दान करनेसे हमें अधिकाधिक आनन्द प्राप्त होता है और जितना ही अधिक इन्हें हम दान करते जाते हैं, उतना ही अधिक ये हमें प्राप्त होती जाती हैं। दीन-से-दीन व्यक्ति भी इन बहुमूल्य दैवी विभूतियोंको दान करके परमानन्दका लाभ उठाता है।

अतः निरन्तर अबाध गतिसे अपनेको नियन्त्रित करते हुए सच्चे सुखकी उपलब्धि करना ही हमारे जीवनका लक्ष्य होना चाहिये एवं यही सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है।

जब ऋषि गहने बनवाने निकले

[कहानी]

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए० पी-एच्० डी०)

'एक बात बहुत दिनोंसे कहना चाहती थी, महर्षि !'

'कहो, चुप कैसे रह गयी, भद्रे !'

ऋषिपत्नी लोपामुद्राने महर्षि अगस्त्यसे एक दिन कहा—

'मेरी इच्छा है पतिदेव ! आप मेरी अशिष्टता क्षमा करें, तो कुछ कहूँ ?'

'अवश्य कहो, क्षमा करनेकी बात तुमने खूब कही, जो कहना हो साफ-साफ कह डालो। पति-पत्नीमें दुराव कैसा ! मनकी गुत्थी खोल दो। भला, आजतक क्यों न कही वह बात ?'

'महर्षि ! विचित्र इच्छा है मेरी। एक ऋषिकी धर्म-पत्नीके लिये ऐसा सोचना भी शायद अप्रिय लगे।'

'इसकी चिन्ता न करो लोपामुद्रा ! हम सब आखिर हाड़-मांसके पुतले ही हैं। कोई देवी-देवताकी कोटिको तो पहुँचे नहीं हैं, जो मनकी इच्छाओं और कल्पनाओंको जीत चुके हों ! फिर तुम तो कम आयुकी नारी हो। मैं तो तपस्वी हूँ, इन्द्रिय-निग्रहका अभ्यास करता रहता हूँ··· त्याग और संयममें विश्वास करता हूँ···मैंने तो अपनी सांसारिक वासनाओंका दमन किया है···लेकिन···अरे, मैं यह क्या-क्या कहने लगा ! तुम कुछ कह रही थी मुझसे ?'

लोपामुद्रा बोली—

'मैं तो अल्पज्ञ···अज्ञानी···अविकसित नारी हूँ··· सांसारिक प्रलोभन प्रायः मुझे दबा लेते हैं·····अभी आत्मविकासके उस ऊँचे स्तरपर नहीं पहुँच सकी हूँ···।'

'कोई बात नहीं लोपामुद्रा ! तुम निःशंक अपने मनकी वह गुप्त इच्छा कहो। तुम तो कभी कुछ कहती ही नहीं हो। पता नहीं, आज तुम्हारे मनमें कुछ कहनेकी इच्छा क्योंकर उमड़ पड़ी है।'

'आप भी क्या कहेंगे, इस लोपामुद्राको आज क्या सूझी है !'

'अरे, यह भी क्या सोचनेकी बात है ! मनकी उमंग ही सही !'

'बात यह है कि जब मैं अपनी उम्रकी नारियोंको···।'

'हाँ, हाँ, कहो न, कहते-कहते रुक क्यों गयी ? इसमें छिपाने-जैसी क्या बात है ? भला तुम अपनी उम्रकी स्त्रियोंमें क्या देखती हो ? अपनेमें क्या कमी पाती हो !'

'कुछ नहीं ! मैं कह रही थी·····मेरा मतलब है कि·····।'

'क्या अभिप्राय है तुम्हारा ? कहो न । लोपामुद्रा ! तुम बड़ी संकोचशीला हो !'

'छोटी-सी बात है···मैं जब अपनी आयुकी नारियोंको अच्छे आभूषण पहिने देखती हूँ तो·····।'

'आभूषण !···नारी और आभूषण—दोनों एक ही नाम हैं। मैं तुम्हारा मतलब समझ गया। बस, तुम्हारे इस संकेत मात्रसे मैंने अनुमान लगा लिया है। तुम कहना यह चाहती हो कि जब कभी तुम अपने समान आयुवाली नारियोंको आभूषणोंसे सुसज्जित देखती हो, तो स्वयं तुम्हारी भी इच्छा हो उठती है कि मैं भी आभूषण पहिनती···मैं भी सधवा स्त्रियोंकी तरह वैसा ही साज-श्रृंगार करती········आयुका तकाजा है·····ठीक-

…ठीक…। तुम्हारा क्या अपराध है। यह सब स्वाभाविक बात है।'

'अरे, आप तो मेरे मनकी सारी बातें एकदम समझ गये। सचमुच मेरे पास भी कुछ आभूषण होते, तो क्या अच्छा रहता…। ऋषिपत्नी होकर मेरे मनमें यह क्या बात उठी है? आप भी इस इच्छाको सुनकर क्या कहते होंगे! यह देखिये, मेरे हाथ, पाँव, नाक, कान—कहीं एक भी आभूषण नहीं है…सब ही स्त्रियाँ गहने पहिनती हैं!' गहनोंकी इस माँगपर ऋषि असमंजसमें पड़ गये।

पत्नीके लिये आभूषणोंका कैसे प्रबन्ध हो ?

वे सोचने लगे, मैं एक त्यागी ऋषि हूँ। सांसारिकतासे दूर रहता आया हूँ। मैंने कभी धन एकत्रित करनेकी बात ही नहीं सोची। एक पैसा भी जमा-पूँजी मेरे पास नहीं है… फिर आभूषण खरीदने या बनवानेकी बात सोचना ही एक विडम्बना है। पर नारी तो आखिर नारी ही है, नादान और अल्पज्ञ…। वह इतनी विकसित कहाँ कि धन, यौवन और आभूषणके मोहसे ऊँची उठ सके। उसे सांसारिक प्रलोभन झकझोरेंगे ही! एक ऋषिके लिये माया-मोहके बन्धनसे दूर रहना सम्भव हो सकता है, किंतु एक कमजोर स्त्रीके लिये प्रलोभनोंसे छुटकारा आसान नहीं है। यदि यह आभूषणोंकी माँग करती है, तो क्या बुरी बात कहती है। मुझे चाहिये कि इसके लिये कहींसे कैसे भी आभूषणों-का कुछ प्रबन्ध करूँ।''

पतिको विचारोंमें डूबे देखकर लोपामुद्राने कहा, 'पतिदेव! मैंने आपको व्यर्थ ही उलझनमें डाल दिया…।'

'नहीं, नहीं, तुम्हारा आभूषणोंके लिये मन करना कोई अस्वाभाविक बात तो नहीं है। प्रायः सभी स्त्रियोंको मन-ही-मन गहनोंकी गुप्त इच्छा होती है…फिर अभी तुम्हारी आयु भी तो कम ही है। तुमने यदि आभूषणोंके लिये प्रार्थना की तो कौन अस्वाभाविक बात कर डाली! मेरा कर्तव्य है कि तुम्हारे लिये आभूषणोंका प्रबन्ध करूँ।'

'आपको आभूषण लानेमें व्यर्थ ही कष्ट होगा। क्या करूँ, जो नारियाँ मिलती हैं, नंगे हाथ और आभूषण-विहीन कान, नाक, गला रखनेपर व्यंग्य-बाण कसती रहती हैं। तंग आकर आज कह डाला है। स्त्री-समाजमें बिना गहनोंके आदरसे नहीं देखा जाता। सुहागिनी नारीके लिये आभूषण एक सामाजिक आवश्यकता है। मैं ऋषिपत्नी जरूर हूँ, पर सुहागिनीकी प्रथम आवश्यकता—आभूषण भी जरूरी है। क्षमा करें…।'

लोपामुद्राने दबे हुए दर्दको आज व्यक्त ही कर डाला था। वह बहुत दिनोंसे अपने दबे हुए भाव व्यक्त करनेको आतुर थी, किंतु आज अपने-आपको सँभाल न सकी थी।

लेकिन ऋषिके लिये गहनोंका प्रबन्ध एक समस्या बन गयी !

अब महर्षि अगस्त्यको आभूषण बनवानेकी चिन्ता सताने लगी। किसी प्रकार कुछ धन मिले, तो आभूषणोंका प्रबन्ध किया जाय। यदि समाजमें रहना है, तो धनकी जरूरत है ही। ऋषिको स्वयं अपनी गिनी-चुनी आवश्यकता-ओंके लिये कुछ भी नहीं चाहिये था, परंतु नारी तो माया-मोहकी बेल है। वह सारा संसार है।

वे सोचने लगे, 'मैं गृहस्थी हूँ। मेरे धर्मपत्नी है, गृहस्थको थोड़ा-बहुत कुछ धन तो अपने पास रखना चाहिये ही। भौतिक उन्नति भी आध्यात्मिक उन्नतिमें सहायक होती है। अब पत्नी आभूषण माँगती है और इधर हाथमें एक पैसा नहीं है……आज मैं यह अनुभव करता हूँ कि धनमें सृजनात्मक शक्ति है।'

सङ्गका प्रभाव! महर्षि अगस्त्य यह सोच-सोचकर पछताने लगे। जरा-सी कामना जगी कि उसके लिये चिन्तित होना अनिवार्य। निःस्पृह ऋषि सोचने लगे—'अब मैं किससे धनकी याचना करूँ?'

'गुरुको अपने शिष्योंपर ही गर्व होता है। वे ही संकटमें उसकी सहायता करते हैं।

'पत्नीकी कामना पूर्ण करनेमें किसी धनिक शिष्यका ही सहारा लेना ठीक रहेगा।'—उन्होंने मनमें योजना बनायी।

लेकिन कौन इतना धन देगा? साधारण मनुष्यके बल-बूतेकी यह बात नहीं है।

पूरा दिन सोचते-विचारते व्यतीत हो गया। आखिर एक युक्ति सूझी। दूसरे दिन—

कुछ शिष्योंको साथ लेकर वे राजा श्रुतर्वाके पास चल दिये। सदा निष्काम विरक्त त्यागी ऋषि गृहस्थीके जंजालमें फँस गये! सांसारिकताने उन्हें दबा लिया!

जीवनमें पहली बार वे धनकी याचनाके लिये निकले थे। मनमें बड़ी लज्जाका भाव अनुभव कर रहे थे। 'कैसे मैं राजासे धनकी माँग करूँगा ? क्या शब्द होंगे ? वह मन-ही-मन क्या सोचेगा ?' ऋषिका मन उथल-पुथलसे भरा था। भाँति-भाँतिके विचार आ रहे थे। धनकामना होनेपर भी ऋषिका हृदय पवित्र था, उनके मनमें एक सद्भाव जगा और उन्होंने संकल्प किया।

'खैर धन तो माँगेंगे, किंतु किसीके पापके पैसे कदापि स्वीकार न करेंगे। दान लें, तो सात्त्विक और पवित्र कमाईमेंसे ही लेंगे।'

उनके ओंठ बुदबुदाने लगे—

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं
चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू
रायस्पोषेण सचते सुवीरः॥
(ऋग्वेद १। १२५। १)

अर्थात् जो निरालस्यपूर्वक धर्माचरणद्वारा धन उपार्जित करता है तथा दूसरोंके हितमें भी उसी प्रकार लगाता है, वह व्यक्ति इस संसारमें सदा सुखी रहता है।

'जो ईमानदारीसे मेहनत करके धन कमाता है, किसीका अहित नहीं करता, किसीको प्रवञ्चित अथवा प्रताड़ित नहीं करता, अनुचित उपार्जनसे दूर रहता है, पसीनेकी कमाईसे उसीमें संतुष्ट रहता है…स्वार्थकी अपेक्षा परमार्थको महत्त्व देता है, धनका उदारतापूर्वक नित्य सत्कार्यमें उपयोग करता है। लोभीकी तरह संग्रह नहीं करता। जो ऐसा होता है, उसीको प्रसन्नता, सुख-शान्ति, स्थिरता एवं संतुलन प्राप्त होते हैं। इस प्रकार धर्माचरण करनेवालेका धन ही हम लेंगे……कुमार्गगामियोंका और अनुचित उपायोंसे अर्जित धन हम भिक्षामें स्वीकार नहीं करेंगे…।' ऋषिने मन-ही-मन यह दृढ़ संकल्प कर लिया।

चलते-चलते वे राजाके महलके द्वारपर आ पहुँचे।

राजा श्रुतर्वाने जब सुना कि उनके गुरु पधार रहे हैं, तो उनके हर्षकी सीमा न रही।

शिष्यने इसे अपना सौभाग्य समझा कि आज देवतुल्य उनके गुरु महर्षि अगस्त्य उनके यहाँ पधार रहे हैं।

राजाने महर्षिका समुचित स्वागत-सत्कार किया।

'कोई सेवा बताइये, गुरुदेव !' राजाने याचना की।

'श्रुतर्वा ! मेरे आनेका एक कारण है।'

'धन्य हूँ ! महर्षि जो आपने आज मुझे अपनी सेवाके योग्य समझा और यहाँ पधारे। आप जो कहेंगे, वह इच्छा अवश्य पूर्ण करनेका प्रयत्न करूँगा, आज्ञा दीजिये। यह राज्य, इस राज्यका कोष, हम सब आपके हैं। जो आज्ञा देंगे, वही सहर्ष शिरोधार्य होगी। मेरे अहोभाग्य हैं कि मैं आज अपने गुरुकी सेवा कर पा रहा हूँ। गुरुसे जो विद्या पढ़ी है, उसीके पुण्य-प्रतापसे राज्य-संचालनमें मुझे कुशलता मिल रही है। मेरी सांसारिक सफलताका सारा श्रेय आपको ही है।'

'मुझे पत्नीके आभूषण बनवानेके लिये कुछ धन चाहिये।'

'धन चाहिये, गुरुदेव ! आपने धन-जैसी तुच्छ वस्तुकी क्या माँग की है ! आप यह सारा राज्य माँगते, तो वह भी आपके चरणोंपर न्योछावर था। आप यह शरीर माँगते, वह भी सहर्ष प्रस्तुत है। चाहे चमड़ा निकलवाकर जूता बनवा लीजिये। अपनेको धन्य मानूँगा। गुरुका ऋण तो जीवनभर नहीं उतरता है…। धनकी माँग तो बहुत ही मामूली-सी माँग है। मेरे खजानेका सारा धन आपके लिये खुला है। जितना चाहिये, ले लीजिये। मैं अभी राज्यके कोषाध्यक्षको बुलवाता हूँ। कुंजी आपके चरणोंपर रख दूँगा। कोषमेंसे जितना चाहिये ले जाइये।'

ऋषि यह सुनकर संतुष्ट हुए।

फिर बोले, 'तुम्हारी गुरुभक्ति देखकर मनमें बड़ी शान्ति मिली। मैंने जो विद्या पढ़ायी थी, आज उसकी सफलता मैं तुममें प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।'

'आपके आशीर्वादसे मैं पूर्ण समृद्ध हूँ। आप जितना धन चाहें, सहर्ष मुझसे ले लीजिये।'

'ले लूँगा, पर एक शर्त है।'

'क्या शर्त है, गुरुदेव ?'

'जो धन धर्मपूर्वक कमाया और उचित कामोंमें खर्च करनेसे बचा हो, उसीको मैं ले सकता हूँ।'

'गुरुदेव ! यह तो बड़ी कठिन माँग है। राज्यमें धन तरह-तरहके स्रोतोंसे आता है। पता नहीं, कितना

धर्मकी कमाईका है ? कितना उचित कामोंके खर्च करनेसे बचा हुआ है ।'

'पहले इसका पता लगा लो । पापका एक पैसा भी मुझे स्वीकार न होगा ।'

'कठिन परीक्षा है, गुरुदेव ! फिर भी मैं पता चलाता हूँ कि इस कसौटीपर कितना रुपया खरा बैठता है ?'

'किंतु मैं विश्वास नहीं करता । तुम गुरुभक्त हो, भावुक हो, आज्ञाकारी हो । कहीं गुरुको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे बिना जाँच-पड़तालके रुपया दे डालो, तो हितके स्थानपर उल्टे अहित हो जायगा ।'

'गुरुदेव ! तब आप स्वयं ही सारे हिसाबकी जाँच-पड़ताल कर लीजिये ।'

यह कहकर राजा श्रुतर्वाने महर्षि अगस्त्यको राज्यके कोषाध्यक्षके पास भेज दिया ताकि वे सारी आमदनी और खर्च जाँच कर देख सकें कि 'उनका इच्छित धन है या नहीं ? कितना रुपया धर्मपूर्वक कमाया गया है और कितना उचित कामोंके खर्च करनेसे बचा है ?'

उस जाँच-पड़तालमें ऋषिको कई दिन लगे । पर्याप्त परिश्रम भी करना पड़ा ।

हिसाबकी जाँचका नतीजा क्या रहा ?

अगस्त्यने राज्यकोष जाँचा तो समस्त राज्य-कोषको धर्मकी उपार्जित कमाईका ही पाया, पर साथ ही उचित कार्योंका खर्च करनेको इतना बाकी था कि उसमें बचतकी कुछ भी गुंजाइश न रही । प्रजाकी उन्नति, लोकोपकारकी योजनाएँ, धर्मशालाएँ, कुएँ, बावड़ी, पुस्तकालय, विद्यालय, मन्दिर इत्यादि अनेक उचित कामोंमें और व्यय होना शेष था । जमा-खर्च बराबर था ।

'मैं तुम्हारे राज्यकोषसे कुछ भी न ले सकूँगा ।'

'क्यों, मैं ऐसा अभागा क्यों रहा ? क्या मेरी कमाई पापकी मिली है ?'

'नहीं, श्रुतर्वा ! मेरे पढ़ाये शिष्य भला पापकी कमाई कैसे कर सकते हैं ?'

'फिर क्या हुआ ? मेरी आर्थिक-सेवा क्यों स्वीकार नहीं की जा रही है ?'

'श्रुतर्वा ! तुम्हें अपने कोषमें पर्याप्त रुपया दीखता है, किंतु तुम्हारे पास अनेक उचित कार्य भी करनेको शेष पड़े हैं, जिनमें यह रुपया अभी खर्च होना है । तुम्हें अनेक पीड़ितोंके लिये औषधालय खुलवाने हैं, गरीबोंके लिये व्यवसायोंका प्रबन्ध करना है और असहाय, दीन-दुखियोंके लिये अनाथालय बनवाने हैं, राज्यमें अनेक स्थानोंपर विद्यालय और औषधालय खुलवानेको पड़े हैं, कई स्थानोंपर धर्मशालाएँ, पुस्तकालय और वाचनालय चलाने हैं । इनके अतिरिक्त सार्वजनिक हितके सैकड़ों काम करनेको शेष पड़े हैं । प्रजाका यह धन इन सबमें खर्च हो जायगा । राज्यके तमाम नागरिकोंके स्वास्थ्य, शिक्षा, उन्नति और सदाचारकी सारी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है। मैंने जाँच-पड़तालसे पाया है कि उचित कामोंमें खर्च करनेपर तुम्हारे राज्यमें बचत कुछ भी न रहेगी । जमा-खर्च बराबर रहेगा । फिर मैं कैसे तुमसे धन लूँ ?'

'फिर मैं क्या करूँ ? मेरे लिये क्या आज्ञा है ?'

'मजबूरी है । तुम्हारे यहाँसे कुछ भी लेनेका मतलब यह है कि प्रजाके कुछ काम अपूर्ण ही रह जायँगे । उनकी आवश्यकता हमारी आवश्यकतासे बड़ी है । अतः हमें तुमसे दान नहीं लेना है ।'

श्रुतर्वाका चेहरा दुःखसे म्लान हो उठा ।

महर्षि अगस्त्य वहाँसे चल दिये ।

अब वे राजा धनस्वके यहाँ पहुँचे । उन्होंने सोचा, 'चलो, यहाँ जरूर कुछ धर्मपूर्वक कमाया और उचित कामोंमें खर्च करनेसे बचा धन मिलेगा ।'

उन्होंने राजा धनस्वको उसी प्रकार अपना अभिप्राय कह सुनाया । वे बोले, 'महर्षि ! मेरे भी हिसाबकी जाँच-पड़ताल कर लीजिये । पता नहीं, वे आपके कामके हों, या न हों ।'

महर्षिने उसी प्रकार हिसाब जाँचा, तो वहाँ भी उसी प्रकार संतुलन पाया गया । महर्षि बोले—'धनका महत्त्व तभी है, जब वह नीतिपूर्वक कमाया गया हो । अनीतिसे कमाया तो जा सकता है, पर जिन लोगोंके द्वारा वह कमाया गया है, जिनका शोषण और उत्पीड़न हुआ है, उनका विक्षोभ सारी मानवताके लिये घातक परिणाम उत्पन्न करता है । शोषित एवं उत्पीड़ित व्यक्ति जब देखते हैं कि उन्हें ठगा या सताया गया है या जिसने शोषण किया

है, वह मौज कर रहा है, तो उनका मन आस्तिकता एवं नैतिकताके प्रति विद्रोहकी भावनासे भर जाता है···मैंने देखा है कि तुमने सारा धन धर्माचरणसे कमाया है, उसके द्वारा अनेक उपयोगी कार्य भी होते हैं···तुम धन कमानेमें सच्चाईका और उसके सदुपयोगका महत्त्व समझते हो। सदुद्देश्योंके लिये उचित मात्रामें खर्च करनेके कारण वहाँ मैंने संतुलन ही पाया है। जमा-खर्च बराबर है। मेरे लिये कुछ बचता ही नहीं, फिर कैसे लूँ ?'

अगस्त्य राजा धनस्वसे भी बिना कुछ स्वीकार किये ही चले गये।

सोचते जाते थे, 'ये राजा धर्मपूर्वक कमाते तो हैं, पर उस धनको उचित कार्योंमें मुक्त हृदयसे खुले हाथों व्यय भी करते हैं। जमा-खर्च बराबर है। मुझे यह हर्ष है कि यद्यपि मेरे धनी शिष्य मुझे कुछ नहीं दे सके हैं, वे धनकी पवित्रतापर ध्यान रखनेवाले निकले हैं···कोषमें बचत कुछ भी न निकली।'

महर्षि कई सदाचारी बहुत धनी शिष्योंके पास गये, किंतु कहींसे बचतके पैसे न मिले। 'जैसी ईश्वरकी इच्छा !' कहकर वे वापिस लौट रहे थे। सोच रहे थे कि लोपामुद्रासे क्षमा माँगकर कहूँगा कि 'आभूषणोंके लिये कहीं भी धनका प्रबन्ध नहीं हो सका है। किसी सत्पुरुषके कोषमें बचत ही नहीं मिली है।'

कितनी निराशा ! कितनी विवशता !

पत्नी आभूषणोंके लिये पूछेगी, तो क्या उत्तर देंगे उसे ! वह कहेगी, महर्षि ! समाजमें आपकी कोई मान-प्रतिष्ठा नहीं ! कोई साख नहीं ! किसीके पास आपको देनेके लिये भिक्षा नहीं ! निरुपाय हो वे वापिस लौटने लगे।

संयोगसे वापिस लौटते-लौटते मार्गमें उन्हें इल्वण नामक दैत्य मिला। महर्षिको देख उसने साष्टांग दण्डवत् किया और उनका अभिप्राय पूछा।

'महर्षि ! मुझे भी सेवाका मौका दीजिये। मेरे यहाँ विपुल धन-सम्पत्ति जमा है। उसमेंसे आप जितनी चाहें प्रसन्नतापूर्वक ले जा सकते हैं।'

'किंतु मुझे तो धर्मपूर्वक कमाये हुए उस धनमेंसे भिक्षा चाहिये, जो उचित कामोंमें खर्च करनेसे बचा हो।' वे बोले !

'महर्षि ! इसका तो मुझे ज्ञान नहीं है कि आप जैसा धन चाहते हैं, वैसा मेरे पास है या नहीं। पर मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरा धन महर्षिके काम आये। मेरे पास अनाप-शनाप धन भरा हुआ है। मैंने अरबों कमाया है, करोड़ों खर्च करनेपर भी मेरे पास धन-ही-धन इकट्ठा है। कृपाकर मेरे कोषको देख लीजिये, लेकिन पहले यह धन स्वीकार कीजिये।'

ऐसा कहकर स्वर्णमुद्राओंसे भरा एक संदूक उन्होंने ऋषिके चरणोंपर रख दिया। बोला, 'यह देनेसे मेरे कोषमें तनिक भी कमी आनेवाली नहीं है। यह आप स्वयं देख लीजिये।'

अब दैत्य इल्वण उन्हें अपना कोष दिखाने लगा। आश्चर्यसे ऋषिने देखा, दैत्यके पास उनके धनी समझे जानेवाले शिष्यों राजा श्रुतर्वा और राजा धनस्वसे भी कहीं अधिक धन संगृहीत था। बहुमूल्य रत्नों तथा स्वर्णके ढेर लगे हुए थे। एकके बाद दूसरा कमरा धनसे भरा हुआ था। सर्वत्र स्वर्ण-ही-स्वर्ण, रत्न-ही-रत्न भरे थे !

'बस, यहाँसे मुझे पत्नीके आभूषणोंके लिये धन मिल गया।' ऋषिके मनमें आया, 'मैं यह ले लूँगा, तब भी इस कोषमें कोई कमी पड़नेवाली नहीं है। चलो, यहाँ आकर लोपामुद्राकी बात रह जायगी।'

यह सोचकर ऋषिका मुरझाया हुआ मुख कुछ प्रदीप्त हो उठा। अब उन्हें अपनी धर्मपत्नीकी इच्छा पूर्ण करनेका एक नया आधार दृष्टिगोचर होने लगा। सचमुच धनमें रचनात्मक शक्ति है। अभी बिना पैसेके वे अपने आपको कितना निर्बल और असहाय अनुभव कर रहे थे, किंतु अब यह धन पाकर उनका विक्षोभ और मानसिक दुर्बलता दूर हो गयी थी।

'किंतु स्वीकार करनेसे पहले मैं इसे जाँचना चाहूँगा।'

'जाँचकी क्या आवश्यकता है ? मैं खुशी-खुशी आपके चरणोंमें भेंट कर रहा हूँ। आपके यह धन काम आयेगा, तो इससे मुझे बड़ी खुशी होगी। मेरा मन रखनेके लिये कृपाकर इस धनको स्वीकार कर लीजिये।'

फिर वह गरजकर बोला, 'अरे नौकरो ! इस भारी संदूकको महर्षिके आश्रममें पहुँचा दो। जल्दी करो।'

तुरंत अशर्फियोंसे भरा संदूक उठाकर नौकर चलनेको खड़े हो गये।

'खड़े-खड़े क्या देखते हो। पहुँचा दो, इसे महर्षिके आश्रममें! जल्दी करो। महर्षिके पहुँचनेसे पहले ही ये स्वर्ण-मुद्राएँ गुरुपत्नीके सामने पहुँच जानी चाहिये।'

जबतक अगस्त्य कुछ कहें, तबतक नौकर भागते-भागते सामनेसे निकल गये।

पल मारते ही यह सब घटना हो गयी।

अगस्त्यके मनमें फिर उथल-पुथल शुरू हो गयी, 'कहींसे भी धन नहीं मिला था। अब यह घर पहुँच ही चुका होगा। चुप रह जाऊँ, तो क्या हर्ज है? अहह! इस धनको देखकर लोपामुद्रा कितनी प्रसन्न होगी! उसके सारे आभूषण बन जायँगे। फिर भी पर्याप्त स्वर्णमुद्राएँ शेष बच रहेंगी।'

लेकिन थोड़ी देर बाद ही सदाचारी हृदयमें स्थित उनके विवेकने उन्हें फटकारते हुए कहा, 'अपने पूर्व-संकल्पको याद कीजिये महर्षि! आपने तो कहा था कि जो धन धर्मपूर्वक कमाया और उचित कामोंमें खर्च करनेसे बचा होगा, उसीको लूँगा। नारीकी इच्छा पूर्ण करनेके कारण इतनेमें ही धर्मसे डिग गये? छिः छिः छिः! पहले इस धनकी परीक्षा तो कर लीजिये, कैसा है?'

उधर नौकर स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर गुरुपत्नीके सम्मुख थे। 'यह धन आपके पास भेजा है। कृपया स्वीकार कीजिये।'—नौकरोंने शिष्टतापूर्वक निवेदन किया।

धन देखकर लोपामुद्रा अत्यन्त हर्षित हुई! 'अरे, मेरे पतिकी शक्ति अभीतक मुझे विदित नहीं थी। थोड़े-से संकेत मात्रसे इतनी विपुल धन-राशि इकट्ठी कर लाये। इनके शिष्य कितने गुरुभक्त हैं, जिन्होंने संकेत पाते ही इतना धन दे डाला। इस धनसे तो असंख्य आभूषण बन जायँगे। मुझसे पहने भी न जायँगे। कई सेट चूड़ियाँ, गलेके अनेक आभूषण, नाक, कान, पाँव—सभीके लिये एक-से-एक सुन्दर आभूषण बन जायँगे…। अब देखूँ, कौन स्त्री कहती है कि मेरे पास गहने नहीं हैं। मेरा गला, नाक, कान नंगे हैं। सबसे अधिक संख्यामें मेरे ही पास आभूषण रहेंगे। मेरे पतिमें कितनी शक्ति है।'

लोपामुद्रा विस्फारित नेत्रोंसे उन स्वर्णमुद्राओंको देखने लगी। मुट्ठियाँ भर-भरकर बच्चोंकी तरह वह मुद्राओंसे खेलने लगी। अहह! ये मुद्राएँ कितनी सुन्दर,…कितनी प्यारी लगती हैं।

उधर महर्षिने दैत्य इल्वणका हिसाब जाँचना शुरू किया। उन्होंने पाया कि वह धन अनीतिपूर्वक कमाया गया था…। अनेक गरीबोंका शोषण और उत्पीड़न हुआ था। किसीके साथ बरबस दुर्व्यवहारसे धन छीन लिया गया था, तो किसीको झूठ-फरेबसे ठगा गया था। निर्बलोंको सताया गया था। इस धनको एकत्रित करनेमें मिथ्याचार, भ्रष्टाचार, कपट, तस्कर-व्यापार, मिलावट, नकलीपन आदि सभी अनैतिक उपायोंका प्रयोग किया गया था। यह हरामकी कमाई विलासिता, व्यभिचार, बाह्याडम्बर, व्यसन, नशेबाजीमें ही खर्च हो रही थी। बाहरसे तो वैभवका दिखावा था, पर अंदर-ही-अंदर सब अस्त-व्यस्त और विक्षुब्ध थे। पैसेके लिये एक दूसरेकी हत्या करनेको उतारू थे। उनमें अपराधी प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर बढ़ी जा रही थीं।

उचित जनहितके कार्योंमें खर्च न करनेकी कंजूसीकी वजहसे वह धन दैत्यके कब्जेमें था। पैसा जहाँ रुकता है, वहीं सड़ने लगता है। अनुचित अर्थोपार्जनसे परिणाममें शोक-संताप ही पैदा होता है। पापकी कमाई अन्ततः खेदजनक दुष्परिणाम प्रस्तुत करती है। देने और लेनेवाले—दोनों ही नष्ट होकर समाप्त हो जाते हैं। अमीरीसे मानवोचित शुभ सात्त्विक आकांक्षाएँ कुण्ठित हो जाती हैं। महर्षिने इस पापकी कमाईमेंसे कुछ भी लेनेमें धर्मपत्नीका अहित देखा।

'महर्षि! क्या मेरे इस विपुल भंडारसे कुछ भी स्वीकार न करेंगे।'

'मुझसे बड़ी भूल हो गयी। हाय, अब क्या होगा?'

'कौन-सी भूल?'

'तुम्हारे नौकर मेरे घर स्वर्ण-मुद्राओंसे भरा एक बक्स ले गये हैं। वह मेरे काम न आ सकेगा…उसे फौरन वापस मँगवाओ।'

'क्यों, क्या बात हो गयी? जाँचका क्या परिणाम निकला?'

'इल्वण! मुझे यह कहते हुए खेद है कि तुम्हारी विपुल सम्पत्तिमेंसे मेरे कामका एक पैसा भी नहीं है। उसपर पापकी छाया है।'

महर्षि अगस्त्य खाली हाथ लौट आये।

प्रतीक्षामें बैठी हुई लोपामुद्रा ऋषिको आते देख स्वागतके लिये खड़ी हो गयी। आते ही वे बोले—'ये

स्वर्ण-मुद्राएँ तुरंत लौटा दो। हम उनमेंसे एक पैसा भी न लेंगे।'

'क्यों क्या हुआ? घर आयी सम्पत्तिको क्यों लौटा रहे हैं?'

'लोपामुद्रा! धर्मसे कमाई करने और शुभ कार्योंमें उदारतापूर्वक उचित खर्च करनेवालोंके पास कुछ बचता नहीं है। अनीतिसे कमानेवाले कृपण लोगोंके पास ही धन पाया जाता है, सो उस पापकी कमाईको लेनेसे हमारे ऋषि-जीवनमें बाधा पड़ेगी······।'

'फिर मेरे लिये क्या सोचा है आपने···वे गहने···?'

'भद्रे! अपवित्र धनसे शोभायमान होनेकी अपेक्षा तुम्हारे लिये पवित्रताकी रक्षा करते हुए अभावग्रस्त रहना ही उचित तथा विशेष सुशोभन है।'

लोपामुद्रा थी तो पवित्रहृदया ऋषिपत्नी ही, उसने पतिके दृष्टिकोणका औचित्य समझा और शोभा-सौन्दर्यकी क्षुद्र कामना छोड़ सादगीके साथ वह अत्यन्त सुखपूर्वक रहने लगी।

श्रीसूरदासजीका होली-वर्णन

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

षट् ऋतुओंमें 'वसन्तको ऋतुराज'की उपाधि प्राप्त है। वसन्तके कोमल करस्पर्श मात्रसे ही वसुंधरा मुदित हो जाती है। सर्वत्र आनन्द एवं मस्ती थिरकने लगती है। प्रकृति नटी बन-ठनकर अत्यन्त लावण्यवतीके रूपमें दर्शन देती है। वृक्ष अपने पुराने पत्तोंको छोड़कर नूतन एवं कोमल पत्ते धारण कर लेते हैं। सरोवरमें कमल एवं धरतीपर पलास खिल जाते हैं। आम्र-मञ्जरियोंकी मादक गन्ध दिक्-दिगन्तमें व्याप्त हो जाती है। मत्त भ्रमरकुल मधुपानके लिये गुंजार करता हुआ विकसित कलिकाओंकी ओर चल देता है। अमराइयोंमें कोयल मधुर ध्वनिमें कूकने लगती है। वासन्ती पवन मदमत्तकी भाँति डोलता हुआ सर्वत्र उन्मद संदेश सुनाने लगता है। सर्वत्र मदमस्तीका प्रभाव व्याप्त हो जाता है। वसन्तके इस मोहक स्वरूपपर किस पुरुषका हृदय अर्पित नहीं हो जायगा। सरिता-सरोवरोंके निर्मल नीरमें अरुण, नीले एवं उज्ज्वल विकसित कमलोंको देखकर, वनोंमें पुष्पोंसे लदी लता-वल्लरियोंपर दृष्टि डालकर, आम्र-मौरोंकी भीनी सुगन्ध पाकर, भ्रमरोंकी गुंजार एवं कुंजोंकी ओरसे आती हुई पञ्चमकी धुन सुनकर कौन नहीं छक जायगा, कौन नहीं बिक जायगा? और इसी कारण संस्कृतके कवियोंने वसन्त-वर्णनमें अपनी लेखनीके अद्भुत कौशलका परिचय दिया है। यहाँ हम महाकवि कालिदासका एक श्लोक उद्धृत करते हैं। वसन्तका प्रभाव देखिये—

> द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं
> स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
> सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः
> सर्वं प्रियं चारुतरं वसन्ते॥

'वसन्तमें सब कुछ सुहावना हो गया है। वृक्षोंमें फूल खिल आये हैं, जलमें कमल खिल गये हैं, स्त्रियोंमें काम जग उठा है, पवन सुगन्धसे भर गयी है, संध्या सुहावनी हो उठी है और दिन लुभावने हो गये हैं।'

इसी प्रकार महाकवि भारवि, महाकवि माघ, भोजदेव, पीयूषवर्षी जयदेव, पण्डितराज जगन्नाथ आदि संस्कृतके महाविद्वानोंद्वारा वर्णित वसन्त-वर्णन पढ़-सुनकर मन मुग्ध हो जाता है। हिंदी-साहित्यके कवियोंने भी इसके यशोगानमें अपनी विलक्षण प्रतिभाका भरपूर उपयोग किया है। संत कवि भी अपने आराध्यकी लीलाओंके स्मरणके मिससे वसन्तका पर्याप्त गुणगान करनेमें किसीसे पीछे नहीं रहे हैं। संत नंददासका वर्णन देखिये—

> लहकनि लागी बसंत-बहार सखि, त्यौं-त्यौं बनवारी लाग्यौ बहकनि।
> फूले पलास नख नाहर-कैसे, तैसौइ कानन लाग्यौ री महकनि॥
> कोकिल, मोर, सुक, सारस, खंजन, भ्रमर देखि, अँखियाँ लगीं ललकनि॥

श्रीगोविन्दस्वामी अनुपम वसन्तका कीर्तिगान इस प्रकार करते हैं—

> आयौ बसंत रितु अनूप कंत आम्र मौरे।
> बोलत बन कोकिला मानों कुहू-कुहू रस ढोरे॥
> फूली बनराजि जाइ कुंद-कुसुम थोरे।
> मधु-राते, मधु-माते मधुप फिरत दौरे॥
> हम-तुम मिलि देखैं लाल निकुंज-भवन-द्वारैं।
> 'गोविंद' प्रभु नंद-सुवन खेलत इक ठौरैं॥

इन संतोंने वसन्तमें श्रीहरि-लीलाके कितने ही सुललित पदोंकी रचना की है, जिनको पढ़ते ही मन मुग्ध एवं

तन्मय हो जाता है। वे रचनाएँ हिंदीसाहित्यकी अनमोल निधि तो हैं ही, भक्तोंकी प्राणप्रिय सम्पत्ति हैं। इन संत कवियोंमें भक्तप्रवर श्रीसूरदासजीका अत्यन्त आदरणीय स्थान है। हिंदी कविकुलमें संत सूर 'सूर्य'की उपाधिसे विभूषित हैं। इनके अनूठे पदोंके कितने ही संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। श्रीसूरदासजीका वसन्त-वर्णन देखिये—

कोकिल बोली, बन-बन फूले, मधुप गुँजारन लागे।
सुनि भयौ भोर, रोर बंदिन कौ, मदन-महीपति जागे॥
ते दूने अंकुर द्रुम-पल्लव, जे पहिले दव-दागे।
मानहुँ रति-पति रीझि जाचकनि, बरन-बरन दए बागे॥

'कानन कुसुमित हो गये। भ्रमर गुंजार करने लगे। कोकिल कूकने लगी। मदन-महीपति इन बंदियोंका कोलाहल सुनकर सबेरा हुआ जानकर जाग पड़े। उन वृक्षोंमें, जिनके पल्लव पहले पीले होकर गिर पड़े थे, दूने नये पत्ते लग गये हैं मानो रतिपतिने संतुष्ट होकर याचकोंको विविध रंगोंके वस्त्र दिये हों।' इस लघु निबन्धमें अधिक वर्णन उपस्थित करना सम्भव नहीं। यहाँ केवल एक पद और उद्धृत किया जाता है। वसन्तके सुन्दर वर्णनके साथ उपमाकी अद्भुत छटा इस पदमें देखते ही बनती है—

देखत बन ब्रजनाथ आजु अति उपजत है अनुराग।
मानहुँ मदन-बसंत मिले दोउ खेलत फूले फाग॥
झाँझ झिली, निर्झर निसान-ढफ, भेरि भँवर-गुंजार।
मानहुँ मदन मंडली रचि पुर-बीथिन बिपिन बिहार॥
द्रुम-गन मध्य पलास-मंजरी, उदित अगिनि की नाईं।
अपनें-अपनें मेरनि मानौ, होरी हरषि लगाईं॥
केकी, कोक, कपोत और खग करत कुलाहल भारी।
मानहुँ लै लै नाउँ परस्पर, देत-दिवावत गारी॥
कुंज-कुंज प्रति कोकिल कूजति, अति रस बिमल बढ़ी।
मनु कुल-बधू निलज भईं गृह-गृह गावतिं अटनि चढ़ी॥
प्रफुलित लता जहाँ-जहँ देखत, तहाँ-तहाँ अलि जात।
मानहुँ बिट सबहिनि अवलोकत, परसत गनिका-गात॥
लीन्हे पुहुप-पराग पवन कर, क्रीड़त चहुँ दिसि धाइ।
रस अनरस संजोगिनि बिरहिनि, भरि छाँड़त मन माइ॥
बहु बिधि सुमन अनेक रंग छबि उत्तम भाँति धरे।
मनु रतिनाथ हाथ सौं सबहीं लै लै रंग भरे॥
और कहाँ लगि कहौं रूप-निधि, बृंदा-बिपिन बिराज।
'सूरदास' प्रभु सब सुख क्रीड़त, स्याम तुम्हारे राज॥

वसन्तका कितना सुन्दर एवं सरस वर्णन है। बार-बार पढ़नेपर भी तृप्ति नहीं होती। इस प्रकार इनके रचे कितने ही अत्यन्त ललित पद प्राप्य हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर मन मुदित हुए बिना नहीं रहता। इनका रंगोत्सव-वर्णन भी अनुपम है। देखिये—

पिय-प्यारी खेलैं जमुन-तीर। भरि केसरि कुमकुम अरु अबीर॥
घसि मृगमद चंदन अरु गुलाल। रँग भीने अरगज बस्त्र-माल॥
हरि सँग खेलति हैं सब फाग।
इहिं मिस करतिं प्रगट गोपी, उर-अंतर कौ अनुराग॥
सारी पहिरि सुरंग, कसि कंचुकि, काजर दे-दे नैन।
बनि बनि निकसि-निकसि भईं ठाढ़ी सुनि माधौ के बैन॥
ढफ बाँसुरी, रुंज अरु महुअरि, बाजत ताल-मृदंग।
अति आनंद मनोहर बानी, गावत, उठति तरंग॥
एक कोध गोबिंद ग्वाल सब, एक कोध ब्रजनारि।
छाँड़ि सकुच सब देतिं परस्पर, अपनी भाई गारि॥
मिलि दस-पाँच अलीं चलि कृष्नहि गहि लावतिं अचकाइ।
भरि अरगजा अबीर कनक-घट देतिं सीस तें नाइ॥
छिरकतिं सखी कुमकुमा-केसरि, भुरकतिं बंदन-धूरि।
सोभित है तनु साँझ समै घन आए हैं मनु पूरि॥

गोकुलकी ग्वालिनें होलीके दिन किस प्रकार फाग खेलनेके लिये चलती हैं और रंगोत्सव पर्वपर कितना आनन्द एवं कितनी मस्ती छायी है, इसके लिये महात्मा सूरके पद देखने योग्य हैं—

गोकुल सकल गुवालिनी, घर-घर खेलतिं फाग॥ मनोरा झूम करो॥
तिनमैं राधा लाड़िली, जिनकौ अधिक सुहाग॥ मनोरा० ॥
झुंडनि मिलि गावत चलीं, झूमत नंद-दुवार॥ मनोरा० ॥
आजु परब हँसि खेलिये, मिलि सँग नंद-कुमार॥ मनोरा० ॥

होली खेलनेके लिये नन्द-द्वारपर श्यामसुन्दरकी प्रतीक्षामें सजी गोपियोंके सम्बन्धमें श्रीसूरदासजी कहते हैं—

राती-पीरी अँगिया पहिरें, नव तन झूमक सारी॥
मुख तमोर, नैननि भरि काजर, देहिं भावतीं गारी॥
रितु बसंत आगम रति-नायक, जोबन-भार भरीं।
देखन रूप मदनमोहन कौ, नंद दुवार खरीं॥

उधर यशोदानन्दन मदनमोहन होली खेलनेकी कैसी तैयारी करके निकले हैं, महाकवि सूरदासजीके ही शब्दोंमें सुनिये—

निकसि कुँवर खेलन चले, रँग होरी ।
मोहन नंद-किसोर, लाल रँग होरी ॥
कंचन माँट भराइ के, रँग होरी ।
सोधैं भरयो कमोर, लाल रँग होरी ॥
झाँझ-ताल सुर-मंडले, रँग होरी ।
बाजत मधुर मृदंग, लाल रँग होरी ॥
तिन मैं परम सुहावनी, रँग होरी ।
महुवरि, बाँसुरि, चंग, लाल रँग होरी ॥

होलीके एक नहीं, सैकड़ों पद एक-से-एक सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक महाकविके रचे हुए हैं । उन्हें बार-बार पढ़नेकी इच्छा होती है । कविवरेण्यने होली-वर्णनमें प्रेमकी मञ्जुल मूर्ति गोपियों एवं आनन्दकन्द श्रीकृष्णकी प्रेम-लीलाओंका खूब सरस एवं हृदयग्राही वर्णन किया है । यहाँ हम ऐसी एक मधुर लीलाका उल्लेख करते हैं—

कालिन्दी-कूलपर यशोदानन्दन श्रीकृष्ण कुञ्जोंमें होली खेल रहे हैं । एक ओर तो श्रीकृष्ण अपने सखाओं गोप-बालकोंके साथ हैं और दूसरी ओर वृषभानुकुमारी श्रीराधा अपनी सखियोंके साथ आयी हुई हैं । होलीकी प्रतिद्वन्द्विता-में वे परस्पर स्नेहसिक्त गाली देते हैं और हाथोंमें स्वर्णकी पिचकारी लेकर एक-दूसरेपर केसर-मिश्रित रंग डालते हैं, अबीर-गुलाल उड़ाते हैं ।

होरी खेलत जमुना के तट, कुंजनि तर बनवारी ।
इत सखियन कौ मंडल जोरें, श्रीबृषभानु-दुलारी ॥
होड़ा-होड़ी होत परस्पर, देत हैं आनँद-गारी ।
भरे गुलाल कुमकुमा केसर, कर कंचन-पिचकारी ॥

वहाँ वीणा, महुवर, किन्नरी, मुरचंग तथा बाँसुरी बज रही है । झाँझ, मृदंग और ढफके स्वरोंकी तरङ्गें उठ रही हैं । गोप-बालक एवं श्रीकिशोरीजीकी सखियाँ सभी एक-दूसरेपर केसर और रंग छोड़ते हैं तथा स्वयं हँसते और दूसरोंको भी हँसाते हैं ।

इसी समय चतुर श्रीकृष्णने अपने सखाओंको बुलाकर कहा—'भाइयो, होलीके रंग एवं विनोदमें भी सजग रहना कोई गोपियोंके हाथ न आ जाय, अन्यथा यदि गोपियाँ किसीको पकड़ लेंगी तो मनमानी दुर्गति कर डालेंगी ।'

रे भैया ! तुम चौकस रहियो, जिनि कोउ होहु गहायौ ।
जो काहू कौ पकरि पाइहैं, करिहैं मन कौ भायौ ॥
तातें सावधान है रहियौ, मैं तुमकौं समुझायौ ॥

श्रीकिशोरीजी भी कम चतुर नहीं थीं । उन्होंने भी अपनी एक सखीको बुलाकर उसे दाऊजीके वेषमें सजा दिया ।

राधा गोरी नवल किसोरी, इनहूँ मतो जु कीन्हो ।
सखि इक बोलि लई अपनैं ढिग, भेष जु बल को कीन्हो ॥

सखी बलरामके वेषमें श्रीकृष्णकी ओर गयी । श्रीकृष्ण उससे मिलने चले । कोई भी गोपबालक सखीको पहचान नहीं सका । उसने श्यामसुन्दरको अपनी बातोंमें जरा-सा उलझाकर पीछेसे उन्हें पकड़ लिया । फिर क्या था, श्यामसुन्दरके पकड़में आते ही सारी गोपियाँ वहाँ एकत्र हो गयीं । वे कहने लगीं कि 'हम विधातासे यही याचना कर रही थीं कि श्यामसुन्दरसे अपना दाँव कब पायेंगी । जब तुमने हमलोगोंके वस्त्रोंकी चोरी की, तब हम आकुल होकर रह गयी थीं । अब हम तुम्हारे वस्त्र छीन लेंगी और तुम छटपटाओगे ।' सूरदासजीके शब्दोंमें—

ताकौं मिलन चले उठि मोहन, काहूँ सखा न चीन्हौ ।
नैंसुक बात लगाइ साँवरैं पाछे तैं गहि लीन्हौ ॥
आईं सिमिटि सकल ब्रज-सुंदरि, मोहन पकरे जबहीं ।
हम माँगत हीं यह बिधिना पै, दाँव पाइहैं कबहीं ॥
तब तुम चीर हरे जु हमारे, हा-हा खाई सबहीं ।
अब हम बसन छीनि करि लैहैं, हा-हा करिहौ अबहीं ॥

एक सखी कहती है—'इनके मुखारविन्दके लिये मेरी आँखें भ्रमरी हैं । जरा इनका मुखारविन्द उठाओ । मैं इन्हें देखकर अपनी तृषा शान्त कर लूँ ।'

एक सखी कहती है—'इनकी आँखोंमें अंजन एवं माथेपर बेंदी लगा दें ।' एक कहती है—'इन्हें नचाया जाय और हम सब ताल दें ।'

एक सखी पीछेसे आयी और उनके मयूरपिच्छपर हाथ साफ कर दिया और एक सखीने अचानक आकर उनका पीताम्बर छीन लिया ।

एक सखी कहै बदन उघावहु, हमहूँ देखन पावैं ।
श्रीमुख-कमल नैन मेरे मधुकर, तनकी तृषा बुझावैं ॥
एक सखी कहै आँखि आँजि कै, माथें बेंदी लावैं ।
एक सखी कहै इनहि नचावहु, हम सब ताल बजावैं ॥
एक सखी जु आइ पाछे तैं, मोर-पच्छ गहि लीन्यौ ।
एक सखी त्यौं आइ अचानक, पीतांबर धरि छीन्यौ ॥

एक सखीने श्रीकृष्णकी आँखमें अंजन लगाकर उनके मुखपर रंग पोत दिया। उसे किसी प्रकारका भय नहीं था। होलीमें भय क्यों ?

एक जु आँखि आँजि, मुख माँड्यो, ऊपर गुलचा दीन्यो।
मानत कौन फाग में प्रभुता, मन भायौ सो कीन्यो॥

होलीमें कौन किसे रोके। इस मत्त-कालमें बड़े-छोटेका भेद कहाँ ? संत श्रीकुम्भनदासजीने भी गाया है—

'होरी कै है औसरु, जिनि कोऊ रिस मानै।'

सखियोंको इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ। प्रेमोन्मत्त सखियोंमें एक बोली, 'अब तुमको तुम्हारे दाऊ भैया आकर छुड़ा लें।' एक बोली, 'अपना एक सखा घरपर भेजकर यशोदा मैयाको बुला लो। वे आकर तुम्हें छुड़ा लें।' एकने कहा—'तुम्हें छूटनेकी अनेक विधियाँ विदित हैं, पर आज नहीं छूट सकोगे। हाँ, यदि तुम किशोरीजीसे अनुनय-विनय करो तो वे छुड़ा सकती हैं।'

एक कहै—बोलो बल भैया, तुमकौं आइ छुड़ावैं।
सखा एक पठवौ कोइ घर कौं, जसुमति कौं है आवैं॥
जानत हौ कल-बल कै छूटैं, सो नहिं छूटन पावैं।
राधा जू सौं करौ बीनती, वै बलि तुमहिं छुड़ावैं॥

इसी बीच सखियोंने दूरसे बलरामजीको आते देखा और छलपूर्वक उन्हें भी पकड़कर श्रीकृष्णके पास एक ओर खड़ा कर दिया। श्रीकिशोरीजीके संकेतसे सखियोंने उनकी आँखोंमें भी अंजन लगाकर मुखपर रंग पोत दिया।

दूरहि तैं देख्यो बल आवत, सखी बहुत उठि धाईं।
कल-बल-छल जैसैं-तैसैं करि, उनहूँ कौं गहि ल्याईं॥
किये आनि ठाढ़े इक ठौरहिं, बल-मोहन दोउ भाई।
उनहूँ की आँखि आँजि मुख माँड्यो, राधा सैन बुझाई॥

सूरदासजी कहते हैं कि जिस परमानन्दसिन्धु आनन्दघनके दर्शनार्थ ऋषि-मुनि कठोर तप करते हैं और ध्यानमें भी उनकी मनोहर मूर्तिके दर्शन नहीं कर पाते, वे व्रजवनिताओंके सम्मुख हाथ जोड़े खड़े हैं। व्रजाङ्गनाओंके सौभाग्यके लिये क्या कहा जाय ?

जाके काज ध्यान धरि देख्यौ, ध्यानहु आवत नाहीं।
वे अब देखे बनितनि आगें, ठाढ़े जोरें बाहीं॥

विवशतः मुस्कराकर श्रीकृष्णने कहा—'तुम सबके मनमें जो आये कहो, पर अब मेरा पीताम्बर दे दो। मैं अपने घर जाऊँ।'

हँसि-हँसि कहत सु मोहन प्रीतम, मन-मानौ सुख कीजै।
छाँड़ि देहु, गृह जाउँ आपनें, पीतांबर मोहि दीजै॥

गिरिधरलाल हाथ जोड़कर खड़े हैं और कहते हैं 'हमें आज्ञा दो। तुम्हारी जो इच्छा हो, हमसे फगुआ ले लो। हम तैयार हैं।' और उन्होंने अपने सखाओंको बुलाकर सबकी रुचिके अनुसार विविध प्रकारके वस्त्रोंको पहननेके लिये दिया और खूब मस्ती एवं आनन्दसे रंगोत्सव हुआ।

कर जोरें गिरिवरधर ठाढ़े, अग्या हम कौं दीजै।
जो कछु इच्छा होइ तिहारी, सो सब फगुआ लीजै॥
तब गिरिवरधर सखा बुलाए, फगुआ बहुत मँगायौ।
जोइ-जोइ बसन जाहि मन मान्यौ, सोइ-सोइ तिहिं पहिरायौ॥

श्रीसूरदासजी अपने प्राणधन नन्दनन्दन श्रीकृष्णपर अर्पित होकर प्रेमगद्गद वाणीसे कहते हैं—

राधा-मोहन जुग-जुग जीवौ, सब कोउ भलौ मनायौ।
बाढ़ौ बंस नंद बाबा कौ, सूरदास जस गायौ॥

इस प्रकारकी अनेक मधुर लीलाओंका वर्णन श्रीसूरदासजीने अपने पदोंमें किया है। श्रीकृष्णकी भुवनमोहिनी लीलाओंके ये पद भक्तोंके हृदयको तृप्त करनेके लिये अमृततुल्य और साहित्यकी निधि हैं। यही कारण है कि शताब्दियों पूर्व रचित संत सूरदासजीके ये पद आजतक घर-घर आदर एवं प्रेमपूर्वक गाये जाते हैं और जबतक भारत-धरापर श्रीकृष्णप्रेमी भक्त एवं हिंदी-साहित्य जीवित रहेगा, तबतक गाये जाते रहेंगे।

श्रीरामचरितमानसमें बड़े-छोटोंका पारस्परिक स्नेह एवं भक्तिभाव

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी वर्मा, रिसर्च स्कॉलर)

भारतीय आर्य-परिवारमें बड़े-छोटोंका पारस्परिक स्नेह एवं भक्तिभाव कैसा होना चाहिये, इसे मानसके राम-परिवारमें गोस्वामीजीने सिद्धान्तरूपसे कहा ही नहीं है, व्यावहारिक रूपमें दिखा भी दिया है। तुलसीदासजी उसी भारतीय आर्यपरम्पराके अनुगामी थे, जिसे आजकलकी विलायती बोलीमें 'ज्वाइंट फैमिली' (संयुक्त परिवार) कहते हैं। माता-पिताका संतान तथा संतानका माता-पिता और गुरुके प्रति कैसा हार्दिक सम्बन्ध होना चाहिये, इसका अत्यन्त हृदयाकर्षक चित्रण मानससे बढ़कर अन्यत्र दुर्लभ है। मानसको दृष्टिमें रखकर कोई कहना चाहे तो कह सकता है कि यह एक 'पारिवारिक काव्य' है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी बचपनमें भाइयोंके साथ खेलते, भोजनादि करते तथा विद्याध्ययन करते हैं। स्वयं पढ़ते हैं तथा छोटे भाइयोंको भी पढ़ाते हैं।

बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥

× × ×

अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं॥

× × ×

बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥

प्रातःकाल उठकर माता-पिताकी चरणवन्दना करना, उनके दैनिक कार्योंमें हाथ बँटाना सुयोग्य संतानका लक्षण है। ऐसी संतानपर माता-पिताको भी विशेष स्नेह होता है। देखिये—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

विश्वामित्रके साथ वनमें जानेकी पितासे आज्ञा पाकर राम-लक्ष्मण महलमें जाकर माताओंसे मिलकर उनसे भी बिदाई लेना नहीं भूलते।

जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस।

गुरुकी चरण-सेवा करना तथा गुरुकुलके अनुशासनका पालन करना तुलसीके मतमें प्रथम श्रेणीके शिष्योंका लक्षण है। देखिये—

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥

× × ×

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥
चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

जब जनकजीने अपनी स्वयंवरशालामें शिवका धनुष तोड़ सकनेकी किसीमें सामर्थ्य न देखी और वे निराशापूर्ण वाक्य बोलने लगे, तब धराधारी शेषनागके अवतार लक्ष्मणजीके पौरुषको तथा उनके कुलके अभिमानको असह्य ठेस लगी। उनका मौन रामके प्रति निम्नलिखित शब्दोंमें मुखरित हो उठा—

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥

ज्यों ही लक्ष्मणजी क्रोधभरे वचन बोले कि पृथिवी डगमगा उठी और दिशाओंके हाथी काँप गये। गुरु विश्वामित्रजी, श्रीरघुनाथजी और सब मुनि मनमें प्रसन्न हुए और बार-बार पुलकित होने लगे। ऐसे समय रामका लक्ष्मणपर प्रेम तथा लक्ष्मणका भाईके आज्ञानुसार संयम धारण करना देखिये—

सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥

रामके एक संकेतमात्रपर अनुज किस प्रकार संयमित हो जाते हैं। फिर उनके मुखसे एक शब्द भी न निकला।

अब तनिक रामद्वारा भी गुरुकी आज्ञाका निरभिमान भावसे पालन देखिये—

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥

अन्तिम अर्द्धालीमें रामके रूपमें पौरुष एवं निरभिमानताका कैसा अद्भुत चित्रण है। साथ ही उनका भोलापन भी कम नहीं—

गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मागा॥
सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजरगामी॥

विमाताके प्रति भी सच्ची भक्ति

राम-जैसे पुत्रके प्रति सौतेला भाव रखनेवाली तथा वनवासका अटल वरदान माँगनेवाली विमाता कैकेयीके प्रति भी रामके निम्नलिखित वचनोंमें 'जननी' शब्दका प्रयोग उनकी दुर्भाग्यशून्यताका परिचायक है।

तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी॥
मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन॥

× × ×

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥

इसके अनन्तर राजा दशरथके शोकका कारण बतानेमें अपनी अज्ञानता प्रकट करते हुए कैकेयीने जब राम तथा भरतकी सौगन्ध खायी, तब भी—

रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए॥

पितृ-भक्ति

सच्ची आज्ञाकारी संतानका लक्षण है कि वह कोई ऐसा कार्य न करे, जिससे माता-पिता तथा गुरुजनोंके सम्मुख किसी प्रकारकी दुविधापूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाय। इसके विपरीत यदि मोहवश माता-पिता आदिके सम्मुख किसी कारणवश ऐसी स्थिति आ ही पड़े, तब योग्य संतानका क्या कर्तव्य है—इसे रामने उस समय कर दिखाया जब पुत्रको वनवासकी बात सुनकर पिताको पाला-सा मार गया और वे मूर्च्छित हो गये। पिताकी ऐसी दशा देखकर राम कहते हैं—

अंब एक दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरेहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥
राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

और इसके बाद श्रीराम किस प्रकार पिताकी दुविधाको दूर करते हुए कहते हैं—

तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई॥
अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइहिं पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥

अपने प्रति मोहके कारणसे पितापर आये संकटको रामने कितनी मामूली-सी बात समझकर हल्का कर दिया। सच्ची संतानका माता-पिताके प्रति क्या कर्तव्य है—इसको रामके मुखसे तुलसी कितने स्पष्ट शब्दोंमें कहलवाते हैं—

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥

संतानके जीवनका अन्तिम लक्ष्य माता-पिताको सर्वतोभावेन सुख पहुँचाना होना चाहिये।

माता-पिताका संतानपर स्नेह

माता-पिताका संतानके प्रति स्नेह एक सहज भाव है; परंतु मानसमें दशरथ, कौसल्या तथा सुमित्राने अपनी संतानके प्रति जैसा कर्तव्य निभाया है, वैसा जीवनमें प्रायः देखनेमें कम ही आता है। दशरथने चार पुत्र होते हुए भी रामको मात्र वनवास होनेके दुःखमें प्राण त्याग दिये। इसके अतिरिक्त सौतेली माताके रूपमें कैकेयीने रामके साथ जो कुछ किया, वैसा या उससे भी बढ़कर हमें आज कलिकालमें खूब देखनेको मिलता है। परंतु कौसल्या और सुमित्रा-जैसी विमाताएँ आज कितनी सौतेली संतानोंको उपलब्ध हैं! वयोवृद्ध अनुभवी मनुष्य ही इसका उत्तर दे सकते हैं। इसीके साथ सौतोंका भी पारस्परिक तथा एक-दूसरेकी संतानके प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिये। यह भी मानससे बढ़कर सफलतापूर्वक अन्यत्र चित्रित नहीं हो पाया है।

कौसल्याके ही पुत्र रामको वनवास हो रहा है, इसका उन्हें न कोई सोच है, न संताप। अपितु रामकी अनुपस्थितिमें भरतका क्या होगा, इसकी कल्पनामात्रसे 'विमाता' कौसल्याके हृदयकी धड़कन मानो रुकी ही जाती है। वे रामसे कहती हैं—

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥

लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु ।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु ॥

कौसल्याका शत्रुघ्नपर भी कम स्नेह नहीं है । राम-वियोगमें शत्रुघ्नको रोते देखकर वे उनके आँसुओंको पोंछना नहीं भूलतीं—

भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई । सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥

इधर सुमित्रा भी अपने कर्त्तव्य-पालनमें किसीसे पीछे नहीं रहतीं । वे लक्ष्मणको बड़े भाई तथा भावजकी सर्वतोभावेन सेवाका आदेश देती हैं—

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥

भाइयोंका पारस्परिक स्नेह एवं भक्तिभाव

वनवास रामको हुआ । लक्ष्मण भी उनके साथ वनमें रहकर अग्रजकी सेवा करके जन्मको कृतार्थ करना चाहते हैं । राम सोचते हैं कि 'लक्ष्मणको क्यों व्यर्थ ही क्लेशमें पड़ने दिया जाय ।' रामजी लक्ष्मणको अन्य अनेक कारणोंके व्याजसे घरपर ही रहनेको कहते हैं । इसपर लक्ष्मणकी कैसी दशा हो जाती है ? देखिये—

रहहु तात अस नीति बिचारी । सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी ॥
सिअरें बचन सूखि गए कैसें । परसत तुहिन तामरसु जैसें ॥

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ॥

लक्ष्मणने दासकी कैसी असहाय तथा दयनीय अवस्था प्रकट कर दी है ! उपर्युक्त वचनोंमें अन्तिम पंक्तिपर ध्यान दीजिये ।

सम्पूर्ण रामचरितमानसरूपी शरीरमें भरतकी भ्रातृभक्ति-का प्रसङ्ग मानो कलेजेकी धड़कन है । इस प्रसङ्गके अभावमें रामचरितमानस स्यात् इतर महाकाव्योंके समान साधारण कोटिका ही रहता । तुलसीकी कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा इस प्रसंगके चित्रणमें जितनी चरम सीमाको प्राप्त हुई है, उसीके कारण आज उनकी गणना विश्वके चोटीके कवियोंमें सर्वप्रथम की जाती है । अकेले इस प्रसङ्गपर हम कभी स्वतन्त्र रूपसे लिखेंगे ।

अपनी जननीको मनसा, वाचा अथवा कर्मणा किसी भी प्रकारसे लेशमात्र भी कष्ट पहुँचने देना रौरव नरकका परिणामकारी हो सकता है । परंतु भ्रातृभक्तिके आतिशय्यमें भरत-जैसे धीर-धुरन्धर भी अपनी वाणीपर संयम न रख सके । उनके मुखसे जो कटूक्तियाँ अनायास निकल पड़ीं उनमेंसे कुछ एक सुनिये—

धरि धीरज भरि लेहिं उसासा । पापिनि सबहि भाँति कुल नासा ॥

× × ×

बर मागत मन भइ नहिं पीरा । गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥

इसके बाद कुलगुरु वसिष्ठ तथा माता कौसल्या सभी भरतको राजगद्दी सँभालनेका औचित्य प्रकट करते हैं तथा नाना प्रकारसे समझाते हैं । परंतु राम-वियोगमें भरत उनकी किसी बातको नहीं मानते । वे अत्यन्त विनम्रतापूर्वक सबको उत्तर देते हैं—

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका । प्रजा सचिव संमत सबही का ॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा । अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा ॥
गुर पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी ॥
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू । धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥

× × ×

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू । मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ॥
उतरु देउँ छमब अपराधू । दुखित दोष गुन गनहिं न साधू ॥

× × ×

हित हमार सियपति सेवकाई । सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं । आन उपायँ मोर हित नाहीं ॥

× × ×

जाउँ राम पहिं आयसु देहू । एकहिं आँक मोर हित एहू ॥

× × ×

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका । राय रजायसु सब कहँ नीका ॥
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही । कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥

अब तनिक भरतकी भ्रातृभक्तिका उस समयका भी चित्र देखिये, जब वे रामको लिवाने जानेके लिये वन-मार्गमेंसे जा रहे हैं—

गवने भरत पयादेहिं पाए । कोतल संग जाहिं डोरिआए ॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा । होइअ नाथ अस्व असवारा ॥

सेवकोंकी प्रार्थनापर भ्रातृभक्त भरतजीका उत्तर सुनिये—

रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरम कठोरा॥

अब तनिक भरतके रूप तथा मनोदशाकी ओर भी ध्यान दें—

अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥

एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती॥
एहि कुरोग कर औषध नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं॥

इसके बाद वनमें राम-भरत-संवादके समय भरतकी सच्ची भ्रातृभक्तिके उज्ज्वल रूपकी चरम सीमा उनके निम्नलिखित शब्दोंमें प्रस्फुटित हो उठती है—

अब कृपालु जस आयसु होई। करौं सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥

× × ×

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥

बड़े भाई श्रीरामजीकी चरण-पादुकाएँ प्राप्त हो जानेपर भी मनसा-वाचा तथा कर्मणा वनवासी भरतकी कैसी स्थिति है, चौदह वर्षकी कठोर यातना सहते हुए शरीरमें प्राणोंको किस प्रकार सँभाले हुए हैं, उनके लिये पल-पलका समय कितना दुःसह हो रहा है, यह निम्नलिखित शब्द-चित्रसे पूर्णतः स्पष्ट है—

नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरमधुर धीरा॥
जटाजूट सिर मुनि पट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी॥
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

इसके अतिरिक्त वे नित्यप्रति प्रभुकी पादुकाओंका पूजन करते हैं तथा—

मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति।

× × ×

लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥

हनुमान्‌जी द्वारा श्रीभरतजीको रावणके साथ रामके युद्धकी तथा लक्ष्मणजीके प्राण-संकटकी बातका पता चलता है, तब उनके मनकी व्यथाका अनुमान ही लगाया जा सकता है। वे कहते हैं—

अहह दैब मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥

उधर हनुमान्‌जीको संजीवनी बूटी लानेमें विलम्ब हो जानेसे छोटे भाई लक्ष्मणकी दशा तेजीसे बिगड़ती देखकर लक्ष्मणके हृदयकी प्रत्येक धड़कनके साथ रामके हृदयकी धड़कन एकाकार हो गयी। लक्ष्मणके हृदयकी धड़कन रुक जानेपर रामके हृदयकी धड़कन भी अवश्य रुक जायगी। लक्ष्मणके सिरको अपनी गोदमें रखकर तथा उसपर हाथ फेरते हुए भगवान् राम स्वयं न जाने किस भगवान्‌से लक्ष्मणके प्राणोंके रक्षार्थ विलापमय प्रार्थना कर रहे हैं—

अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥

जिस दिन राम-वनवासकी अवधि पूर्ण होनेवाली थी, उस दिन प्रातः भ्रातृभक्त श्रीभरतजीके प्राणोंकी धड़कन जीवन और मृत्युके कगारपर खड़ी थी। श्रीभरतजीकी प्रतिज्ञा थी कि निश्चित समयसे एक पलभर भी विलम्ब होनेपर रामजीको उनके पार्थिव शरीरके ही दर्शन हो सकेंगे। घट-घटवासी राम भला भरतके हृदयकी इस बातको कैसे नहीं जानते। उन्होंने निर्विलम्ब पहुँच जानेका पूर्ण प्रबन्ध कर लिया था। इससे पूर्व उन्होंने हनुमान्‌जीको अपना दूत बनाकर अपने आगमनकी पूर्व सूचना भेज दी। इधर भरतजीके दायें अङ्ग फड़कने लगे।

भरत नयन भुज दच्छिन फरकहिं बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥

अत्यधिक प्रेमकी स्थितिमें मनमें इस प्रकारकी आशङ्काओंकी झड़ी लगना मनोवैज्ञानिक सत्य है। अब उनके आत्मधिक्कारकी ओर भी ध्यान दीजिये—

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥

× × × × × ×

अब उनका प्रतिज्ञावाक्य सुनिये—

बीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

इतनेमें ही रामदूत हनुमान्‌जी आते हैं। उन्होंने विरह-व्याकुल भरतजीको जिस रूपमें देखा वह अनुपम है—

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात॥

रामको पता है कि एक क्षणका भी विलम्ब करनेपर कितना भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा। वे समयपर पहुँच ही क्यों न गये! ज्यों ही भरतने बड़े श्रीरामको सामने आते देखा, मानो उनके निकलते प्राणोंको रामने अङ्कुश लगाकर रोक दिया। इस आनन्दातिशय्यमें भरत रामके सम्मुख—

परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥

जब राम छोटे भैयासे कुशल पूछते हैं तब भरतके मुखसे शब्द नहीं निकलता। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया है।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।

अब तनिक सभी भाइयोंका परस्पर तथा बड़ी भाभीसे मिलना भी देखिये—

पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥

और अन्तमें माताओंके साथ पुत्रोंके मिलनका चित्र भी देखें—

कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटी बचन मृदु बहु बिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोग भव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥
भेंटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि॥
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ॥

श्रीसीताजी भी सासुओंसे मिलकर उनके आशीर्वाद प्राप्त करना नहीं भूलतीं।

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानसके राम-परिवारमें परिवारके छोटे-बड़े सदस्योंका परस्पर कितना स्नेह, श्रद्धा, आदरभाव है। सभी छोटे भाई अपने किसी बड़े भाईको पितातुल्य, सभी माताओंको चाहे वे विमाताएँ ही क्यों न हैं, अपनी जननीसे भी बढ़कर मानते हैं, जिससे किसीके मनमें सौतेला भाव पैदा न हो। माताओंका अपने पुत्रोंको सच्चे प्रेमसे रहनेकी शिक्षा देना तथा सौतेले पुत्रको आत्मज-से भी बढ़कर प्यार करना, उसके सुख-दुःखकी चिन्ता करना आदि कुछ ऐसी सामाजिक बातें, जिनसे परिवार तथा समाजके अनेक अनावश्यक झगड़े शान्त होकर उनके स्थानपर प्रेम तथा सद्भावके सुमन उत्पन्न होकर परिवार तथा समाजको सुवासित कर सकते हैं। आजकलकी विमाताओंको, सौतेली संतानको तथा सौतेले बहन-भाइयोंको रामके आदर्श परिवारसे शिक्षा लेना परम हितकारी सिद्ध होगा।

सूक्ष्मशरीर—स्वरूप एवं प्रमाण

(लेखक—रिसर्च स्कालर श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी, एम्० ए० हिंदी-संस्कृत, बी० एड०, व्याकरणाचार्य)

प्राणिजगत्के समस्त प्राणियोंके तीन शरीर होते हैं—

(१) स्थूलशरीर, (२) सूक्ष्मशरीर, (३) कारण-शरीर। जीवात्मा पञ्चकोशोंसे आवृत रहती हैं। पञ्चकोश निम्न हैं—(१) अन्नमयकोश, (२) प्राणमयकोश, (३) मनोमयकोश, (४) विज्ञानमयकोश, (५) आनन्दमय-कोश।

इसमें अन्नमयकोश ही स्थूलशरीर है। प्राणमयकोश, मनोमयकोश एवं विज्ञानमय कोशका समवेतरूप सूक्ष्मशरीर है। वेदान्तके अनुसार [क] (१) पञ्चज्ञानेन्द्रिय (२) पञ्चकर्मेन्द्रिय (३) पञ्चप्राण (४) मन (५) एवं बुद्धि—इन सत्रह अवयवोंसे समवेत चित्तत्त्व ही सूक्ष्मशरीर कहलाता है।

भगवान् शंकराचार्यके शब्दोंमें हम कह सकते हैं—

'सूक्ष्मशरीरं किम् ? अपञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृत-सत्कर्मजन्यं सुख-दुःखादिभोगसाधनं पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि पञ्चप्राणादयः मनश्चैकं बुद्धिश्चैका एवं सप्तदशकलाभिः यत्तिष्ठति तत्सूक्ष्मशरीरम् ॥'

अर्थात् सूक्ष्मशरीर क्या है? बिना पञ्चीकरण किये हुए पञ्चमहाभूतोंसे निर्मित, श्रेष्ठ कर्मोंसे उत्पन्न, सुख-दुःखादिके भोगनेके साधन पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राणादि वायु, एक मन, एक बुद्धि—इस प्रकार सत्रह कलाओंसे युक्त **सूक्ष्मशरीर होता है।**

[ख] सांख्य शास्त्रके अनुसार सूक्ष्मशरीर अष्टादशा-वयवी होता है। (१) महत् (२) अहंकार (३) पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ (४) पञ्चकर्मेन्द्रियाँ (५) पञ्चतन्मात्राएँ (६) मन—इन अठारह अवयवोंसे युक्त सूक्ष्मशरीर **होता है।**

सूक्ष्मशरीरके प्रमाण—(क) निषेधात्मक प्रमाण—

(१) यदि सूक्ष्मशरीर न हो तो कर्मोंके फलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? क्योंकि स्थूल-शरीर तो मृत्युके बाद इसी लोकमें नष्ट हो जाता है। मृत्यूपरान्त कर्मोपभोगके **लिये सूक्ष्मशरीरकी सत्ताका होना आवश्यक है।**

(२) यदि सूक्ष्मशरीर न हो तो जन्मान्तर एवं पुनर्जन्मका विधान किस सिद्धान्तके आधारपर किया जाना सम्भव होगा ? सूक्ष्मशरीरमें ही प्राणियोंकी वासनाओंके समस्त संस्कार विद्यमान रहते हैं। अतः मृत्यूपरान्त उन्हीं वासनाओंके संस्कारोंसे जीवोंके पुनर्जन्मका विधान किया जाता है।

(३) यदि सूक्ष्मशरीरकी सत्ता न हो तो उत्तम एवं निकृष्ट योनियोंमें प्राणियोंके जन्म-ग्रहणका आधार क्या होगा ? सूक्ष्मशरीरकी सत्ता माननेपर इसका आधार पूर्वजन्मोंमें कृत शुभाशुभ कर्म हैं, जिनके संस्कार सूक्ष्म-शरीरमें विद्यमान रहते हैं।

(४) यदि सूक्ष्मशरीर न हो तो नरक-स्वर्गकी स्थितिका आधार क्या होगा? स्थूलशरीर तो यहीं नष्ट हो जायेगा, फिर नरक-स्वर्गमें कर्म-भोग कौन भोगने जायगा ?

(५) यदि सूक्ष्मशरीर न हो तो ईश्वरमें निर्दयता एवं पक्षपातकी दोषापत्ति आयेगी; क्योंकि सूक्ष्मशरीरके अभावमें जीवोंके पूर्वजन्मोंके कर्मोंके संस्कार तो कहीं रहेंगे नहीं, अतः यदि ईश्वर अकारण ही किसी प्राणीको उत्कृष्ट योनि एवं किसीको निकृष्ट योनिमें उत्पन्न करेगा तथा किसीको सुखमय वातावरणमें और किसीको दुःखमय वातावरणमें उत्पन्न करेगा तो उसपर निर्दयता एवं पक्षपातकी दोषापत्ति आयेगी।

(६) यदि सूक्ष्मशरीर न हो तो आध्यात्मिक साधनाओंकी, परकायप्रवेश, सिद्धदर्शन, आकाशसंचरण, अष्टसिद्धियों आदि अनेकों यौगिक उपलब्धियोंकी, आप्त वाक्योंकी, प्रेतावेश, द्विविध व्यक्तित्व, प्रेतदर्शन, सिद्धदर्शन आदि क्रियाओंकी आधारभित्ति क्या होगी ?

स्थानाभावके कारण मैं केवल कतिपय तर्क दे रहा हूँ। इसके बाद सूक्ष्मशरीरकी सत्ताके विध्यात्मक प्रमाण दे रहा हूँ।

[ख] विध्यात्मक प्रमाण—

(१) भगवान् शंकराचार्यने अपने सूक्ष्मशरीरका

प्रोद्गमन करके, राजा सुधन्वा या राजा अमरुकके मृत शरीरमें, अपने सूक्ष्मशरीरका प्रवेश किया था।

(२) मैडम ब्लावेट्स्की नामक रूसी महिलाने हजारों व्यक्तियोंके समक्ष अपने स्थूल शरीरको कमरेमें बंद करके बाहर खड़ी जनताको सूक्ष्मशरीरसे न केवल दर्शन दिया था, प्रत्युत उपदेश भी दिया था।

(३) स्वामी रामकृष्ण परमहंसने अपने महाप्रयाणके बाद भी स्वामी विवेकानन्दको कई बार न केवल दर्शन ही दिया था, प्रत्युत उपदेश भी दिया था।

(४) भगवान् बुद्धने स्वामी विवेकानन्दको ध्यान करते समय दीवारसे प्रकट होकर दर्शन दिया था।

(५) स्वामी योगानन्दने स्वतः देखा था कि प्रणवानन्द योगानन्दका कार्य सम्पन्न करनेके लिये सूक्ष्मशरीरसे केदारनाथको बुलानेके लिये नदीतटपर गये थे, जब कि उनका शरीर स्वामी योगानन्दके समक्ष ही स्थित था। योगानन्दके यह पूछनेपर कि आपको मेरा परिचय किसने दिया एवं आनेके लिये किसने संदेश दिया, तब केदारनाथने कहा कि—स्वामी प्रणवानन्द ही तो गये थे, जब कि स्वामी प्रणवानन्द स्वामी योगानन्दके ही समक्ष बैठे रहे।

(६) स्वामी योगानन्द कलकत्तासे दूर रामपुरमें थे और उनके गुरुदेव कलकत्तेमें थे। उसी समय स्वामी युक्तेश्वरने कलकत्तेमें रहते हुए भी सूक्ष्मशरीरसे स्वामी योगानन्दको रामपुरमें दर्शन दिया एवं वार्ता की तथा अदृश्य हो गये।

(७) युक्तेश्वरके महाप्रयाण हो जानेपर उनको समाधि देकर स्वामी योगानन्द बम्बईके एक होटलमें ठहरे थे। उसी समय संध्यावेलामें स्वामी युक्तेश्वर योगानन्दके समक्ष उपस्थित हुए एवं योगानन्दके द्वारा पूछे गये परलोकविज्ञानके रहस्यात्मक प्रश्नोंपर घंटों प्रवचन किया एवं यथासमय अदृश्य हो गये।

(८) युक्तेश्वर स्वामीके गुरु श्यामाचरण लाहिड़ी अपने गुरु बाबाजीके दर्शन करके लौटते समय एक गाँवमें टिके थे। लाहिड़ी स्वामीने मित्रमण्डलीके बार-बार शंकाएँ एवं अविश्वास करनेपर अपने सुदूरस्थ हिमालयनिवासी 'बाबाजी'का ध्यान किया। बाबाजी सैकड़ों मीलकी दूरी पार करके तत्काल उपस्थित हो गये। 'बाबाजी' ३००० (तीन हजार) वर्षसे भी अधिक आयुके हैं, लेकिन वे आज भी जीवित हैं और अपने प्रेष्ठ साधकोंको दर्शन देते हैं।

—'एक योगीकी आत्मकथा'
स्वामी योगानन्द

(९) स्वामी योगानन्दने अनेकों प्राचीन सिद्धों, ऋषियों एवं महात्माओंके दर्शन किये। ध्यानावस्थामें उन्हें हजारों वर्ष पूर्व वर्तमान सिद्धोंके दर्शन हुए।

—'श्रेय और साधना'
—स्वामी योगानन्द

(१०) कर्नल टाउनशेंड अपनी इच्छाके अनुसार अपने सूक्ष्मशरीरको निकाल लिया करते थे।

(११) जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिकामें थे, तब सप्ताहों भाषण देनेके बाद उनके पास कोई भी नूतन भाषण-सामग्री नहीं रह गयी थी। उस समय रात्रिमें कोई सूक्ष्म सत्ता प्रतिदिन सततरूपसे स्वामीजीके समक्ष भाषण देती थी किंतु दृष्टिगत नहीं होती थी और स्वामीजी भी वही भाषण अविकल रूपसे अमेरिकावासियोंको सुना दिया करते थे। विद्वानोंने निश्चय करके बताया कि वह स्वतः स्वामीजीका सूक्ष्मशरीर ही था।

(१२) हैवेरहिलमाम, डा० लिण्डार्स, ऐंड्र जैक्सन, डा० माल्थ एवं जेल्ट, कारिंग्टन, डुरावेल, मुलडोन, आलिवर लाज, मि० पावर्स, डा० मेस्मर, एलेक्जेन्ड्रा डेविड नील, ब्रण्टन—आदि पाश्चात्त्य साधकोंने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों रीतियोंसे अनुसंधान एवं प्रयोग करके स्थूलशरीरसे भिन्न सूक्ष्मशरीरकी पृथक् सत्ताकी प्रामाणिकता प्रस्तुत की है।

(१३) सिलवान जे० मुलडोन अपने सूक्ष्मशरीरको स्थूलशरीरसे पृथक् कर लेते थे। उन्होंने इसकी साधना प्रक्रिया 'The Projection of Astral Body' नामक ग्रन्थमें विस्तारसे विवेचित की है।

(१४) परमहंस स्वामी विशुद्धानन्दने एक बार अपने स्थूलशरीरको टुकड़े-टुकड़े करके दिखा दिया था, जब कि अपने सूक्ष्मशरीरका उद्गमन करके दर्शकोंको समझाते भी जाते थे।

(१५) स्वामी विशुद्धानन्दजी अपने शिष्योंके संकट-

निवारणार्थ या रोगोंसे मुक्ति देने हेतु [शिष्योंके ध्यान करते ही] सुदूर होते हुए भी तत्काल उपस्थित हो जाते थे और संकट निवारण कर दिया करते थे और फिर अदृश्य हो जाते थे।

(१६) आसाम एवं बंगालमें अत्यन्त प्रख्यात सिद्ध स्वामी निगमानन्दके (सद्गुरुके पानेके अभावमें) आत्महत्या करनेका संकल्प करते ही रात्रिमें एक महापुरुषका आविर्भाव हुआ। उस महापुरुषने बिल्वपत्रपर एकाक्षरी मन्त्र लिखा और वह अदृश्य हो गया।

स्वामीजी मन्त्रकी विधि जाननेके लिये पुनः गुरुकी खोज करने लगे, लेकिन अन्त तक गुरुदेवके दर्शन न होनेपर उन्होंने प्राणत्याग करनेका पुनः संकल्प किया, तभी उसी रात पुनः उस सिद्धने तत्काल दर्शन दिया और स्वामीजीको तारापीठके वामाक्षेपासे दीक्षा लेनेका आदेश दिया और वह अदृश्य हो गया।

(१७) एक बार काशीमें एक अंग्रेज अधिकारीने (नंगे रहनेके अपराधमें) तैलङ्गस्वामीको हवालातमें बंद कर दिया। प्रातःकाल देखा गया तो हवालातका ताला बंद है और स्वामीजी हँसते हुए बाहर टहल रहे हैं।

(१८) नाथ-सम्प्रदायके प्रख्यात योगी जो अभी ३५-४० वर्ष पूर्व जीवित थे, जिनका नाम योगीन्द्र श्रीशीलनाथ था—अपने स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरका बाहर उद्गमन कर लेते थे, आकाशमें उड़ जाते थे, एकसे अनेक हो जाते थे, संकल्प करते ही यथेप्सित स्थानोंमें सूक्ष्मशरीरसे तत्काल पहुँच जाते थे।

स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरका प्रोद्गमन करके यथेप्सित स्थानोंमें पहुँचनेके पौराणिक उदाहरण तो हजारों हैं यथा—वशिष्ठका लोक-लोकान्तरोंमें गमन, लीलाका अनेकों ब्रह्माण्डोंमें परिभ्रमण, चूडालाका सूक्ष्मशरीर धारण करके अपने पतिके पास वनमें गमन, विश्वामित्र, लोमश, मार्कण्डेय, दुर्वासा, विश्वामित्र आदि सभी पौराणिक सिद्धोंकी कथाओंमें लोक लोकान्तरोंमें (अपने सूक्ष्मशरीरसे) भ्रमण करनेके अनन्त उदाहरण हैं। इसी प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, कण्णप्पा, जालंधरनाथ आदि सिद्धोंकी कथाओंमें भी सूक्ष्म-शरीरको स्थूलशरीरसे अलग करके लोक-लोकान्तरों एवं यथेष्ट प्रदेशोंमें परिभ्रमणके वृत्तान्त प्राप्त होते हैं।

(१९) स्वामी शिवानन्दने 'साधना'में कतिपय विशिष्ट साधकोंकी अनुभूतियाँ दी हैं, जिनमें डी० एम० एस० कोटुगस्टोर लिखते हैं कि—'मैं दिनाङ्क १७को रात्रिमें १० बजे हरिद्वारके मद्रासी धर्मशालामें बैठा हुआ प्राकृतिक दृश्य देख रहा था कि मेरे हृदयसे मेरे ही समान एक व्यक्ति निकला और कुर्सीको ढकेलकर उड़ चला। ......और बादमें पुनः मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो गया।'

'दिनाङ्क २० को ३॥ बजे अपराह्णमें वह व्यक्ति शरीरसे निकलकर सभी रजिस्टरोंको यथास्थान रखकर चला गया! ......अकेले ही अन्यान्य स्थानोंमें भ्रमण करता रहा।...... फिर आकर रजिस्टर तथा टाइपराइटर पूर्ववत् रखकर मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो गया।'

सभ्यतासे जगमगाते देश अमेरिकाके प्रधान नगर न्यूयार्ककी स्थिति !

प्रति ४८ घंटेमें पाँच नरहत्या !

न्यूयार्क (अमेरिका) का दिनाङ्क ९ फरवरीका संवाद है—न्यूयार्कके रविवारके सरकारी वक्तव्यके अनुसार न्यूयार्कमें प्रत्येक ४८ घंटेमें पाँच (५) खून हुए हैं।

अङ्कगणनाके अनुसार गतवर्ष प्रतिदिन औसतन १४९ व्यक्ति लूटे गये, पाँच स्त्रियोंपर बलात्कार किये गये तथा ७३ व्यक्तियोंपर आक्रमण हुए।

प्रतिदिन औसतन ४७५ लूटपाटकी तथा चोरीकी घटनाओंकी सूचना मिली। गतवर्ष ७७,४४८ मोटरगाड़ियाँ चोरी गयीं, जो १९६७ से ३३ प्रतिशत अधिक थीं।

न्यूयार्ककी उपर्युक्त खूनकी औसतन संख्या अमेरिकाके अन्य दस बड़े नगरोंसे अनुपातमें कम है। इस अपराधमें सबसे खराब स्थिति हौस्टन, टेक्सासकी है जो बाल्टीमोर और वाशिंगटनसे बढ़कर है।

('नार्दर्न इण्डिया पत्रिका' फरवरी ११)

विश्वमें हाहाकार और हमारा कर्तव्य

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

बात लगभग दो वर्ष पुरानी है। प्रसिद्ध समाजवादी तथा विद्वान् व्यक्ति श्रीअशोक मेहताने मुझसे दिल्लीमें पूछा—

'सम्पूर्णानन्दजी कैसे हैं ? आजकल क्या लिख रहे हैं ?'

'स्वास्थ्य तो ठीक नहीं है; पर वेदपर एक प्रवेशिका लिखनेकी सोच रहे हैं।'—मैंने उत्तर दिया।

अशोक मेहताने व्यंग्यभरे शब्दोंमें कहा—

'अरे भाई ! उन्हें समझाओ कि यह क्या वेद-पुराणका पचड़ा लिये बैठे रहते हैं। अब इनका राग अलापनेसे कोई लाभ नहीं। नयी बातोंपर आना चाहिये।'

मैंने वाराणसीमें डा० सम्पूर्णानन्दजीसे अशोक मेहताका संदेश सुना दिया। वे मुस्कराकर बोले—

'अशोक मुझसे हमेशा ही ऐसा कहते रहे हैं। पर यही हमारा दुर्भाग्य भी है। बिना वेद-पुराणके भारत, भारत ही नहीं रह सकता।'

इस घटनाके कुछ ही दिनके बादकी बात है। ट्रेनमें यात्रा करते समय मैं 'कल्याण'का नवम्बर, १९६७ का अङ्क पढ़ रहा था। एक उच्च सरकारी कर्मचारी भी उसी डब्बेमें थे। उन्होंने हँसकर पूछा—'आप यह सब भी पढ़ते हैं ?'

मैं जरा चौंका, मुझे ऐसा लगा, मानो मेरे हाथमें कामशास्त्रकी कोई भद्दी पुस्तक हो; जिसपर मेरे साथीको आपत्ति हो। पर यह तो एक निहायत सुलझी हुई, रोचक मासिक-पत्रिका थी। मैंने सँभलकर कहा—

'क्यों, इसे पढ़ना बुरा है ?'

'नहीं' वे मुस्कराते हुए बोले—'वही रामलीला, रासलीला—युग बदल गया है। इन चीजोंके हम बहुत ऊपर उठ गये हैं। जब चन्द्रमामें घर बनानेकी बात सोची जा रही है। आपलोग राम-कृष्णकी धुन लगाये हुए हैं।' मैंने इसके उत्तरमें केवल इतना ही कहा—

'अभीतक अन्तरिक्ष-यात्रामें जितने बड़े वैज्ञानिक हैं, सभीने एक स्वरमें कहा है कि हम ज्यों-ज्यों अन्तरिक्षके रहस्योंकी थाह पाते जा रहे हैं, हमारा विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि इस अद्भुत सृष्टिका रचयिता कोई-न-कोई है, जिसका रहस्य अपार है, जिसकी महिमा अपार है।'

विनाशकी ओर

किंतु, आजके युगमें और देशोंकी बात तो जाने दीजिये, भारतवर्षमें पढ़े-लिखे लोग, अशोक मेहता-ऐसे विद्वान्से लेकर कालेजके छात्र भी अपने धर्म, अपने दर्शनके प्रति आस्था खोते जा रहे हैं। विकास तथा अभ्युदयकी चकाचौंधमें हम यह नहीं देख रहे हैं कि ईश्वरीय भावनासे दूर हटता मनुष्य कितना नीचे गिरता जा रहा है। वैभवसे सम्पन्न—सोवियत रूसमें अभी एक कानून बना है, जिसके द्वारा बिना विवाहके पुत्रवती होनेवाली माताओंकी संख्या रोकनेके लिये उनकी पिताविहीन संतानको राजकीय संरक्षणसे वञ्चित करनेकी चेष्टा की गयी है। संयुक्तराज्य अमेरिकाका वैभव विश्वमें अतुलनीय है, पर अमेरिकन सरकारकी रिपोर्टके अनुसार सन् १९६७ में इतना अपराध बढ़ गया है कि हर ४२ मिनटपर एक हत्या, १९ मिनटपर एक बलात्कार-व्यभिचार, हर २ मिनटपर एक घातक हमला, हर पौने तीन मिनटपर एक राहजनी, ४० सेकेंडपर एक मोटरकार-चोरी तथा हर २० सेकेंडपर एक सेंधमारी होती है। 'कल्याण' पढ़नेसे हानि हो सकती है, पर नयी सभ्यतामें जो परिस्थिति पैदा हो रही है, क्या उससे समाजका कल्याण हो रहा है ? सभ्यताकी चोटीपर पहुँचे हुए अमेरिकाका उदाहरण सामने है !

विदेशी भी इस भयंकर स्थितिसे घबरा रहे हैं। हर्बर्ट डब्ल्यू० आर्मस्ट्रांग नामक एक सम्पादकने अभी एक लेखमें लिखा है—

'देखो तो दस वर्षमें ही दुनिया कितनी बदल गयी है। आज नगर या नगरीमें सड़कपर चलना भी खतरेसे खाली नहीं है। जरा-सा घरसे बाहर जाइये, आपके मकानमें चोरी हो जायगी। विद्यार्थी उद्दण्ड हो गया है। विश्वविद्यालयोंमें उत्पात हो रहा है। लगभग २० देशोंके छात्रोंने भयंकर उपद्रव किये हैं। दुखी विवाह, तलाकमें बराबर वृद्धि, बाल-अपराधमें वृद्धि, परिवार और कुटुम्बकी नष्टप्राय स्थिति,

घरेलू झगड़ोंके कारण बढ़ती हुई आत्महत्याएँ—सभ्यताकी नींव ही टूटती जा रही है। जातिगत झगड़े, बलवा, लूट, चारों ओर उपद्रव, दंगा—आखिर सभ्यता ऐसी ही बढ़ती रही तो २१वीं सदी आनेतक क्या होकर रहेगा ?'

विज्ञानकी प्रगति

और यह सब हो रहा है विज्ञानकी प्रगतिकी छायामें! वैज्ञानिकोंके अनुसार आज विज्ञान इतना आगे बढ़ गया है कि यदि वैज्ञानिक-विकास ऐसा ही रहा तो दस-पंद्रह सालमें मनुष्यको हाथसे करनेके लिये काम ही नहीं रहेगा। बटन दबाया और बिजलीका यन्त्र सब काम कर देगा। काम इतना कम करना रहेगा कि मजदूर या मालिक दोनोंको दिनमें छः घंटे—वह भी सप्ताहमें तीन दिन काम करना होगा। सप्ताहमें चार दिन छुट्टी रहेगी। सालमें तीन-चार महीने एकदम छुट्टी रहेगी और ४८ वर्षकी उम्रमें हरेकको कामसे अवकाश ग्रहणकर जीवनके शेष दिन सुखसे बितानेको मिलेंगे। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि नये युगमें हरेक व्यक्तिकी कम-से-कम आमदनी ३,४०,००० रुपया वार्षिक होगी। मनोरञ्जनके लिये इतने वैज्ञानिक साधन होंगे कि अभी उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। औषधविज्ञान मानव-जीवनको १५०-२०० वर्षतकका बना देगा। जिस तरह मशीनके कल-पुर्जे बदलकर नये लगा दिये जाते हैं, वैसे ही शरीरका घिसा हुआ कल-पुर्जा भी बदल दिया जायगा।

जब जीवनको इतना सुख मिलनेवाला है तो क्या होगा ईश्वरका पचड़ा लेकर। यदि संयुक्तराज्य अमेरिकामें हर साल १८,००० व्यक्ति केवल सभ्यताकी चमक-दमकसे ऊबकर आत्महत्या कर लेते हैं; यदि भारतवर्षमें प्रति घंटे एक आत्महत्या होती है तो इससे क्या होता है ? समाज तो प्रगति कर रहा है। धन-वैभव तो बढ़ रहा है। यदि अमेरिकामें इतने बाल-अपराधी हो गये हैं कि आगामी दस सालमें प्रति १० बालक-बालिका पीछे ४ बाल-अपराधी होगा; इंग्लैंडमें अभी भी पाँच माताओंमें एक कुमारी होती है, तो इसमें सभ्यताका क्या दोष है ?

किंतु अन्य विचारक

इस स्थितिको दूसरी दृष्टिसे भी देखनेवाले हैं। अनेक पश्चिमीय विचारकोंने, जिनमें बर्ट्रेंड रसेल भी हैं, कड़ी चेतावनी दी है। वे कहते हैं कि चीन, भारत, अफ्रिकामें—करोड़ों नर-नारी भूखसे तड़प रहे हैं। दुनियाकी आबादी प्रतिक्षण बढ़ रही है। हर सेकेंड ९० बच्चे पैदा हो रहे हैं, ६० व्यक्ति मर रहे हैं। यानी प्रति सेकेंड ३० की आबादी बढ़ रही है। अभी लगभग ३ अरबकी विश्व-जनसंख्या है। ६ अरब बहुत जल्दी हो जायगी। पचास सालमें पैर फैलाकर सोनेको जगह भी दुनियामें नहीं रह जायगी। खड़े-खड़े सोना होगा। हत्या, चोरी, डकैती बेतहाशा बढ़ रही है। जिसके पास जितना है, वह उतना ही अधिक चाहता है। उधर अणु तथा अणुबमकी संख्या इस समय इतनी है कि इनका उपयोग यदि हो जाय तो पचास बार प्रलय होनेके बाद जितनी सृष्टि होगी, वह सब नष्ट हो सकती है।

पश्चिमीय विचारक ही कहते हैं कि यह गति विनाशकी ओर इतनी तीव्र है कि पचीस सालमें आदमीका चैनकी साँस लेना ही हराम हो जायगा। न किसीका घर, न किसीका परिवार। केवल एक पुरानी कहानी रह जायगी। अभीसे ही मानसिक विघटनके लक्षण स्पष्ट हो रहे हैं। अभी हालमें एक खोजके अनुसार रिचार्ड लेमनके शब्दोंमें, न्यूयार्क नगरकी एक बस्तीके १,७५,००० व्यक्तियोंमेंसे २.७ प्रतिशत एकदम पागल, ७.५ प्रतिशत मानसिक रोगके भयंकर शिकार, १३.२ प्रतिशत पागलपनकी द्वितीय श्रेणीमें, २१.७ प्रतिशत नीम मानसिक रोगी तथा ३६.३ प्रतिशतमें मानसिक रोगके लक्षण थे। केवल १८.५ प्रतिशत स्वस्थ मस्तिष्कके थे और इन मानसिक रोगियोंके बारेमें डा० मेनिजर कहते हैं कि 'इनके रोगके अच्छा होनेके लक्षण नहीं हैं।'

कलियुगकी बात

वेद-पुराणके पढ़ने या समझनेवाले दकियानूसी हो सकते हैं, पर वही बात जब पश्चिमीय ढंगसे समझायी जाय तो लोग मानने भी लगते हैं। उदाहरणके लिये हम सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुगकी बात कहते हैं, जब अन्तमें कल्कि-अवतार होगा। पर इसे कपोलकल्पना मान लें; परंतु यहूदी, ईसाई भी तो दूसरे ढंगसे यही बात कहते हैं। ईसासे पाँच-छः सौ वर्ष पूर्व बैबीलोनमें जेर्ज नेबूशेदनजार नामक महान् शासक हुआ था। उसने एक रात भयंकर सपना देखा। दूसरे दिन उसने अपने सभी दरबारियोंको

बुलाकर पूछा कि 'मैंने क्या सपना देखा है जो इतना भयंकर था?' सही उत्तर न देनेपर अनेक राजदरबारी विद्वान् मार डाले गये। तब डेनियल नामक एक पवित्र व्यक्तिने बतलाया कि 'आपने एक विशाल मूर्ति देखी, जिसका सिर सोनेका, धड़ चाँदीका, पेट और जंघा काँसाका और पैर आधा लोहेका, आधा मिट्टीका था।' पर डेनियल इस मूर्तिका असली रहस्य न समझा पाया। यह वास्तवमें चार युगोंका वर्णन है। आज हम लोहेके युगमें हैं। यह लोहा हमें मिट्टीमें मिला देगा। इस मूर्तिका यही अर्थ था।

साम्राज्य बने और बिगड़े। नेबूशेदनजारका चाल्दियन साम्राज्य समाप्त हुआ। ईरानका साम्राज्य यूरोपमें छा गया। फिर यूनानका,—फिर रोमका साम्राज्य ईसवीय सन् ४७६ में समाप्त हुआ। नेपोलियनकी सन् १८१४ में इतिश्रीके बाद चौथा साम्राज्य भी समाप्त हुआ। पर विश्वमें युद्ध, अशान्ति, भयानक आन्दोलन बना रहा। मसोलिनी, हिटलर, स्तालिन—सभी विश्वको अपने पंजेमें रखनेकी चेष्टा करते रहे। अन्तमें ऊबकर, मानवके जीवनको सुख और शान्ति देनेके लिये सन् १९४५में 'यूनाइटेड नेशन्स' 'संयुक्त राष्ट्र-संघ' की स्थापना की गयी। ८० राज्य इसमें सदस्य हैं। सबने शपथ ली है कि 'हम विश्वमें न्याय तथा शान्तिका राज्य चाहते हैं।' पर 'संयुक्त राष्ट्र-संघ' चुपचाप देख रहा है और उन्हीं ८० राज्योंमें कलह मचा हुआ है। सन् १९४५से १९६८के बीचमें ४० महायुद्ध हो चुके। तब विश्वका कल्याण कैसे होगा?

विश्वबन्धुत्व

हमारे पुराण कहते हैं कि ऐसे हाहाकारके समय विश्वके कल्याणके लिये कल्कि-अवतार होगा, जो मानवके दुराचार-का संहार करेगा। हम इस पोंगापंथीपर हँसते हैं। पर डेनियलने भी यही कहा था, जिसकी ओर आज बड़ी तेजी-से पश्चिमका ध्यान जा रहा है। ऊपर लिखे सपनेकी व्याख्या करते हुए डेनियलने कहा था—'ऐसे हाहाकारके समय ईश्वर स्वयं अपने हाथोंमें राजसत्ता लेकर ऐसे राज्य-की स्थापना करेगा, जिसमें मनुष्य स्वतन्त्र होगा और केवल ईश्वरका दास होगा।'

विश्वकी ऐसी बिगड़ती स्थितिको देखकर ही विन्स्टन चर्चिलने कहा था—'यह दुनिया केवल तभी सँभल सकती है जब सब राज्य एकमें मिलकर विश्वराज्य, विश्व-सरकार-की स्थापना हो।' डा० औसगुड कहते हैं कि 'अब हमें विश्व-सरकार ही बचा सकती है।' पर आजके दस हजार वर्ष पूर्व हमारे ऋषि कह गये थे—

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

संसारभरको आर्य बना दो। एक सभ्यता, एक रंग-भेदरहित, केवल एक धर्म, एक संकल्पवाली सभ्यता बना दो और हमने कहा था—

वसुधैव कुटुम्बकम्

'विश्व हमारा कुटुम्ब हो।' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'—'सब लोग सुखी हों।' पश्चिमकी सभ्यता इतना खोकर जो बात कहने लगी है, वही बात बिना कुछ खोये हम युगों-पूर्व कह चुके हैं। आज यूरोप, अमेरिकामें एक आँधी बह उठी है कि 'यदि सर्वनाशसे बचना चाहते हो तो उस पुस्तककी ओर जाओ, उसे पढ़ो—जिसे तुम नहीं पढ़ते पर जो तुम्हें भगवान् प्रदान करती है—वह है 'बाइबिल' बस। बर्टन कहते हैं कि यह 'वह पुस्तक है जिसे कोई नहीं जानता।'

और हमारे पास बाइबिलसे बहुत ऊँची चीज हमारा 'वेद' है, हम उसे नहीं जानना चाहते। पुराणोंको पढ़ना समयका दुरुपयोग समझते हैं। आज समय है कि हम विश्व-को विनाशसे बचायें। अपने धर्म, अपने कर्तव्य—शास्त्रकी एक-एक वाणीसे दुनियाँ बच सकती है। सादा, त्यागमय जीवन, धर्मबुद्धि, ईश्वर—ईश्वरीय न्यायकी आज जितनी माँग है, जितनी पहले कभी न थी। क्या हम इस माँगकी पूर्ति विद्या तथा ज्ञानका साधन होते हुए भी न करेंगे? क्या विदेशोंको शिक्षा देनेका यह सुनहला अवसर हम छोड़ देंगे?

दानका प्रभाव

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)

नाहरगढ़के अधिपति महाराजा श्रीयशवन्तसिंहजी एक दिन आखेटके लिये चम्बल नदीकी कछारमें पधारे। एक शूकरका पीछा करते-करते अपने सेवकोंसे बिछुड़कर बहुत दूर निकल गये। शूकर जलमें कूदकर नदीके पार चला गया तो ये लौटे। उस समय अन्धकार हो जानेसे ये बीहड़ वनमें पथभ्रष्ट होकर भटक गये। इनकी दशा बड़ी शोचनीय थी। क्षुधा-पिपासाकी व्यथासे प्राण अकुला रहे थे। दिनभरकी दौड़-धूपसे थककर शरीर अशक्त हो रहा था। उधर हिंसक जन्तुओंके भयंकर शब्द हृदय दहला रहे थे। कुछ समझमें नहीं आता था कि क्या करें और किधर जायँ। इतनेमें इनको एक ओर कुछ प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ तो ये उसी ओर चल दिये। कुछ दूर जानेपर इनको कुछ प्रकाश एक झोपड़ीसे आता दिखायी दिया और उसके समीप पहुँचकर इन्होंने किवाड़ खटखटाये। यह झोपड़ी केशरीसिंह नामक एक साधारण किसानकी थी, जो उसने अपने खेतमें बना रक्खी थी।

उसने किवाड़ खोले तो उसे एक हृष्टपुष्ट शस्त्रास्त्र-सज्जित अश्वारोही दिखायी दिया, जो केशरीसिंहको देखकर बोला—'कृपा करके एक रात्रिके लिये आश्रय दो तो मेरा जीवन बचे।' केशरीसिंहने उत्तर दिया कि 'आपके योग्य व्यवस्था करना तो मेरे भाग्यमें नहीं, जो कुछ है, आपकी सेवामें प्रस्तुत है। पधारिये।' महाराज घोड़ेसे उतरे, केशरीसिंहने घोड़ेका जीन खोला और उसको घास डालकर घेरेमें बाँध दिया। महाराजको जल दिया, उन्होंने मुख तथा हाथ-पैर धोये और शीतल जल पिया तो प्राण स्थिर हुए, मन शान्त हुआ। जो कुछ किसानके घरमें था, उससे बड़े प्रेमसे भोजन उसकी पत्नीने बनाया और महाराजकी भेंट किया। क्षुधाकी तीव्रतासे यह भोजन उन्हें अमृत-सा स्वादिष्ट लगा। महाराज विश्राम करनेके लिये लेटे तो केशरीसिंहने चरण-सेवा करके उनकी थकान दूर कर दी। महाराज निद्रावश हो गये। प्रातःकाल शौच-स्नानके पश्चात् इनको कलेवा कराकर केशरीसिंह राजमार्गतक विदा करने गया। महाराजने किसानको अपना जीवन-दाता माना और उससे विजयादशमीके दरबारमें आनेका वचन ले लिया। तदनन्तर जब केशरीसिंह दरबारमें गया तो महाराजने बड़ा आदर-सत्कार किया और उसको एक ग्राम जागीरमें दे दिया।

उस सस्ते समयमें केशरीसिंहने तो महाराजके आतिथ्यमें कुछ पैसे ही व्यय किये होंगे, किंतु महाराजने उसको सेवाका जो पुरस्कार दिया, वह उनके अपने ऐश्वर्य तथा वैभवके अनुरूप था। पाठकोंने देखा होगा कि उदारहृदय समृद्धिशाली जन भेंट, उपहार अथवा सेवाके व्यावहारिक मूल्यसे कईगुणा अधिक पारितोषिक देकर ही प्रसन्न होते हैं।

सारे संसारमें जितना ऐश्वर्य-वैभव है, सब प्रभुका है। यदि कोई व्यक्ति उनके विभिन्न रूपोंमें उनकी सेवा करके, उनकी प्रसन्नता तथा संतोष अर्जन करता है तो वे प्रसन्न होकर अपनी अनन्त विभूतिके अनुरूप ही अनन्त ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। इसलिये तत्त्वज्ञोंके इस कथन—'धन चाहिये तो दान करो' की सत्यता सिद्ध होती है। इस सिद्धान्तकी सत्यताका एक उज्ज्वल उदाहरण लेखकके अनुभवमें आया था, जो नीचे लिखा जा रहा है—

राजस्थानके एक सेठ अपने सुपुत्रकी बारात इन्दौरमें एक स्पेशल रेलगाड़ीमें लेकर आये थे, जिसके सारे

डिब्बे प्रथम श्रेणीके थे। यह एक विचित्र तथा अनोखी बात थी और इनके वैभवकी द्योतक थी। इसलिये इनकी फर्मका शंकरलाल भालचन्द नाम मनमें स्थिर तथा अमिट हो गया। कुछ वर्ष पश्चात् जब इनके नगरमें जानेका अवसर मिला तो इनकी फर्मका नाम भी स्मृतिमें उभर आया। मैंने एक पनवाड़ीसे पूछा कि 'भाई! शंकरलाल भालचन्द किस वस्तुका व्यापार करते हैं और उनकी कोठी कहाँ है?' पनवाड़ीने उत्तर दिया कि 'साहब! ये सेठ व्यापार काहेका करते हैं सो तो पता नहीं; दान करते हैं—यह सारा जगत् जानता है। अगले चौकसे दाहिनी ओर इनका तीन तल्लेका सुन्दर महल है और साथ ही एक विशाल नौहरा है; जाकर देख लीजिये।'

सड़कसे कुछ दूर हटकर एक विशाल कलात्मक ढंगसे सुसज्जित कमरेमें सेठजीकी गद्दी थी। वे एक अधेड़ आयुके, विशालकाय, स्वच्छ राजस्थानी पोशाक पहिने तकियेके सहारे गद्देपर विराजमान थे। उनकी सौम्य आकृति, नम्र स्वभाव तथा मीठी बोली आगन्तुकोंके मनको आकर्षण करती थी। सामने सुन्दर वर्दी पहने चार-पाँच सेवक बैठे थे और दाहिनी ओर भीतके पास बैठे छः मुनीम बही-खाते लिख रहे थे।

याचकजन, जिनमें अधिकतर साधु-संत ही होते थे, जब आते तो सेठजी प्रसन्नमुद्रामें बड़ी नम्रतासे पूछते कि 'कहिये महाराज! दासके लिये क्या आज्ञा है?' उत्तर मिलनेपर वह वस्तु—जैसे कम्बल, चादर, लोटा, कमण्डलु—बड़े आदर-सत्कारसे अर्पण की जाती और बिना भोजन किये तो किसीको जाने ही नहीं दिया जाता। कच्चा-पक्का अथवा सीधा जैसा जो चाहता—भोजनका प्रबन्ध था। साधु-महात्माओंको गन्तव्य स्थानोंके टिकट लेकर रेलगाड़ीमें बैठानेके लिये एक अलग बाबू नियत थे। कोई याचक निराश नहीं लौटता था।

जब सेठजी उठकर ऊपर भोजनके लिये गये तो मैंने मुख्य मुनीमजीसे पूछा कि 'भैया! ये सेठजी शंकरलालजी हैं अथवा भालचन्दजी?' तो उसने मुस्कराकर उत्तर दिया कि 'शंकरलाल तथा भालचन्द कौन थे, यह तो इन सेठ दीपचन्द्रजीको भी ज्ञात नहीं है। सौ वर्षसे पुराना बसना (बही-खाता) इसी नामसे चला आ रहा है।' जब फर्मके कामधन्धेका प्रश्न किया तो उत्तर मिला कि 'इनका काम हुंडी-पुर्जेका देशविदेशमें शाखाओंद्वारा होता है, जिनके बही-खाते सामने बैठे मुनीम लिख रहे हैं।' मेरे उनकी सम्पत्तिके अनुमानके प्रश्नका उत्तर उसने यह दिया कि 'संवत् १९५६ के भीषण अकालमें सहस्रों अकाल-पीड़ितोंकी डेढ़ वर्षतक अन्नकी सेवा होती रही और जब पास-पड़ोसके राज्योंके कोष दुष्कालके फलस्वरूप खाली हो गये तो अंग्रेज सरकारने पचास लाख रुपये हमारे यहाँसे उनको उधार दिलवाये थे तथा आठ आने सैकड़ा गारण्टीके स्वयं कमा लिये थे। तबसे अबतक इनकी सम्पत्ति बढ़ती ही रही है। अब आप अनुमान लगा लीजिये।'

(२)

जब मेरा स्थानान्तर दिल्लीमें हुआ तो जिस अधिकारीके स्थानपर मैं आया था, उसीका घर मैंने किरायेपर ले लिया; क्योंकि ढंगका मकान दिल्लीमें उस समय मिलना भी बड़ी समस्या थी। यह मकान उस नयी बस्तीमें था, जिसको रोहतक जिलेके एक धनी सेठने निर्माण कराया था। सेठजीकी दो दूकानें दिल्लीमें थीं और अमृतसर तथा कानपुरमें भी शाखाएँ थीं। एक लाख रुपयेकी आय ये प्रतिवर्ष आयकर-विभागमें प्रदर्शित करते थे।

विचारसे यह स्पष्ट हो जाता है कि धनका अर्जन

इसलिये होता है कि इसकी विद्यमानतासे दान, धर्म होता रहे तथा अपने और अपने कहानेवाले परिवारको हर प्रकारका सुख तथा सुविधा प्राप्त हो सके। यदि धनका व्यय इन दोनों कार्योंमें नहीं होता तो धनका होना-न-होना बराबर है। दान, भोग और नाश— धनकी ये गतियाँ प्रसिद्ध हैं।

इन सेठजीकी धनमें इतनी आसक्ति थी कि इनका इकलौता पुत्र भी इनसे दुखी तथा असंतुष्ट रहता था; क्योंकि उसको मौज-शौकके लिये इनसे पर्याप्त धन नहीं मिलता था। दान-धर्ममें पैसा खर्च करना ये मूर्खता मानते थे। यहाँतक कि धर्मादा खातेके रुपये भी ये केवल अधिकारीवर्गकी सेवा तथा चंदे आदिमें व्यय करते थे, दान-धर्ममें नहीं। भिक्षार्थी तथा याचकगण प्रायः खाली हाथ ही लौटते थे।

मैं एक वर्ष इनके मकानमें रहकर नयी दिल्लीके एक दूसरे मकानमें चला गया। फिर स्थानान्तर होकर बाहर चला गया। छः वर्ष पश्चात् दूसरी बार दिल्ली आया तो एक दिन कार्यालयमें ही इनका वह सेवक, जो किराया उगाहा करता था, मिल गया। जब मैंने सेठजीका हाल पूछा तो उसने बताया कि 'मेरे मकान छोड़नेके थोड़े समय पश्चात् सेठजीकी मोटरकार-दुर्घटनामें मृत्यु हो गयी। फिर उनके सुपुत्र खुलकर खेलने लगे। मौज-शौकमें अन्धाधुन्ध धन नष्ट किया, जिसकी पूर्तिके लिये सट्टा करने लगे। फल यह हुआ कि घाटे-टोटेमें सारी जायदाद बिक गयी और आजकल वे अपने घर रोहतकमें हैं तथा बड़ी कठिनाईसे दिन काट रहे हैं।

यह जनोक्ति प्रसिद्ध है कि 'लक्ष्मी किसीके घर स्थिर होकर नहीं रहती।' इसीलिये इनका एक नाम 'चञ्चला' भी है। जगन्माता लक्ष्मी सती साध्वी परम पतिव्रता हैं। वे चञ्चला दीखती ही हैं, किंतु हैं नहीं। जिन व्यक्तियोंको कर्मफलस्वरूप धन-सम्पत्ति—लक्ष्मीजी मिलती हैं, तो वे लक्ष्मी माता यह देखनेके लिये वहाँ आती हैं कि 'मेरे पतिदेव वहाँ हैं अथवा नहीं।' जहाँ दान, दया तथा धर्म रहते हैं, वहीं प्रभु विष्णु-भगवान्का निवास होता है। इसलिये वहाँ माता अपने पतिदेवकी सेवाके लिये, जबतक वे रहें, स्थिर होकर निवास करती हैं और जहाँ पतिदेव श्रीविष्णु भगवान् नहीं रहते, वे टिकतीं नहीं। यह सत्य है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि प्रभु अपने प्रिय भक्तोंके समीप सदा बने रहते हैं। यही कारण है कि उन भक्तों-संतोंके न चाहनेपर भी लक्ष्मीदेवी वहाँ आये बिना नहीं रहतीं और वे लोग स्वयं न भोगकर जगत् तथा जीवोंके कल्याणके लिये विविध भाँतिसे उसका प्रभुसेवामें सद्व्यय कर देते हैं।

देना काम ईश्वरका अपना है। इसलिये जो कोई दान देता है तो वह प्रभुका विशेष कार्य सम्पादन करता है, इसलिये भी वह प्रभुकी प्रसन्नताका भागी बनता है। कहा है—

दाता सबका राम है मोदी सकल जहान।
जिसपर हुंडी रामकी सो दाता परमान॥

जीवनका सार

वस्तुमात्र जो तुम्हें मिली है—तन मन धन बल बुद्धि अपार।
हैं वे सभी एक प्रभुकी ही, उनका ही सबपर अधिकार॥
कभी न उनको मानो अपनी, कभी न करो तनिक अभिमान।
करते रहो विनययुत नित प्रभु-सेवामें ही उनको दान॥
ममता रखो एक प्रभुके पद-पद्मोंमें, जो नित्य उदार।
सेवन करो सदा उनका ही समझ यही जीवनका सार॥

उपज

[कहानी—सत्य घटनापर आधारित]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

ग्रामवासियोंने भक्तिभावसे भगवान् श्रीजगन्नाथ-स्वामीका अटका चढ़वाकर महाप्रसाद लिया, आरतीकी लौ नेत्रोंपर एवं शरीरपर लगायी।

पिछली रातको हीरा-धीरा कृषक मित्रोंने बैलोंको हरा घास नीरा और प्रातःकाल उनके कंधोंपर हल बाँधकर चले अपने-अपने खेतोंको, '**ॐ जय जगदीश हरे**……' आरतीके इस भजनको गाते-गाते।

हीरा बोला—'परिश्रम तो खेतोंमें हम इतना करते हैं कि कड़ी धूपसे हमारा तनचर्म जलकर काला पड़ जाता है, पर उपज होना-न-होना तो हमारे हाथमें नहीं है। मैं तो इसको भगवान्पर छोड़कर निश्चिन्त रहता हूँ।'

धीराने हँसकर कहा 'भई, मैं तो इसपर विश्वास करता हूँ कि—

खेती पाती बीनती, अरु घोड़ेका तंग।
अपने आप सम्हालिये, लाख होउ कोइ संग॥

भक्त हीराको बात खली। वह दृढ़तापूर्वक बोला—'भाईजी! पुरुषार्थ जरूर करना चाहिये पर भगवान् अनुकूल हो तभी पुरुष और पुरुषार्थ सफल होते हैं। इसके विपरीत होनेसे पुरुष, पुरुषार्थ दोनों नहीं रहते।* अतः हमें उचित प्रयत्न करते हुए भी नित्य-निरन्तर भगवान्पर भरोसा रखना है और उन्हींका भजन करते रहना है।'

समयपर खेतोंमें फसल लहराने लगी। मित्र-हितैषी हीरा नित्य भगवान्से कर जोड़ प्रार्थना किया करता था कि धीराकी उपज अधिक-से-अधिक हो।

फसलकी रखवाली हेतु हीराने खेतमें मँड़ैया बनायी, जिसे देखकर धीरा हँसी उड़ाते हुए बोला—'तुम तो धर्मात्मा हो, पक्षियोंको चुगने दो। देखो, मैं तो पक्षियों-को सानन्द चुगने देता हूँ। मेरा धर्म तुमसे अधिक है।'

'कहाँतक इसे समझाऊँ! घरवालोंका कैसे उदर-पोषण करेगा यह! भगवान्! मेरे दीनदयाल प्रभो! इस अनाड़ीको सद्बुद्धि प्रदान करो' मनमें यह विचारते हुए हीरा दृढ़तापूर्वक किंतु मृदु वाणीमें बोला—'प्यारे भाई! यह भूल है। खेतमें अन्नकी भलीभाँति रक्षाकर पकनेपर तैयार होनेपर जब हम इसे घर ले जायँगे, तब उसे दान-धर्ममें देना सार्थक होता है।'

परंतु धीराने फिर भी अपने खेतमें पके अन्नकी रखवाली नहीं की।

खलिहानमें ढेर लगा जुआरकी कडबियोंका समान ही। धीरा प्रसन्न हो रहा था अपने पुरुषार्थ और अभिमानपर। पर उसकी भुट्टियोंमें दाने कहाँ थे?

× × × × ×

विधिवत् अन्न तैयार किया गया खलिहानमें। पर यह क्या? 'कडबियाँ बराबर होनेपर भी मेरे अन्नके ढेरमें छोटाई क्यों।' धीराको बड़ा आश्चर्य और पश्चात्ताप होने लगा। उसकी कुण्ठित बुद्धि इसका कारण नहीं जान पायी।

लोग आपसमें कह रहे थे—'भई, हीरा तो धन्ना

---

* पुरुषः पौरुषं तावद्यावद्दैवं तु सम्मुखम्।
विपरीतगते दैवे पुरुषो न च पौरुषम्॥

भक्तके समान है ।' किंतु धीराकी भाग्यहीनतापर किसीको तरस नहीं आ रहा था ।

ग्रामके बढ़ई, लुहार आदि कर्मी वर्षभरकी मजूरी-का अन्न लेनेको आये खलिहानमें । धीरा उन्हें क्या दे ! लज्जित होकर बैठ गया वह एक ओर ।

लोग ताना कसने लगे—

आछे दिन पाछे गये, किया न हरि सों हेत ।
अब पछताये होत का, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥

पनघटपर सभी महिलाएँ आश्चर्यके साथ हीराकी पत्नी जसोदासे पूछने लगीं– 'तुम्हारे शरीरपरके सभी गहने आज कहाँ चले गये ? क्या चोर चुरा ले गये ?'

जसोदाने बार-बार पूछनेपर भी कुछ नहीं बताया । इतनेमेंही उनमेंसे दारोगन शुभा बोल उठी–'अरी सुनो, भाई हीराजी पोटली बाँधकर ले गये धीराजीका ऋण—लगान चुकानेको ।' यह सुन सभी स्त्रियाँ विस्मयपूर्वक बोल उठीं–'हाय ! अब हीराजीकी घर-गृहस्थी कैसे चलेगी ?'

इधर धीरा अपनी अशान्ति मिटानेके हेतु रामस्नेही संतके पास गया । इसे देखते ही संत बोल उठे—'मिल गया न अभिमानका फल ? जाओ, गेहूँकी फसल-की रक्षा करो । पर रामभजन निरन्तर करते रहना ।'

संतसमागमसे सद्वृत्तियाँ जागीं धीराकी । वह संतके आज्ञानुसार कर्म करने लगा । उसके फलस्वरूप समयपर ग्रामवासियोंने देखा कि खलिहानमें धीराके गेहूँका ढेर सबसे ऊँचा है ।

परंतु अब धीराको इसका हर्ष-विषाद कुछ नहीं था । उसे तो रामभजन करनेका ऐसा चस्का लगा कि कृषि-कर्म करते-करते रात-दिन रामभजन किया करता था ।

भजनकी धुनमें ही उसको पत्नीके यह वाक्य सुनायी पड़े—'क्या भूल गये हो जेठजी साहब हीराजी-का परोपकार ?'

यह सुनते ही मानो धीराके चित्तमें चैतन्यता आ गयी हो । वह दौड़ता हुआ हीराके भवनपर गया । हीरा कुएँपर चरस चला रहा था । धीरा वहाँ जाकर उसके पैरोंमें गिर गया । पैर छोड़ता ही नहीं था । हीरा हैरान था ।

बहुत देरके बाद धीरा रुँधे कण्ठस्वरसे कहने लगा–'चलो, खलिहानमें, सँभालो गेहूँके ढेरको । वह तुम्हारा है–मेरा नहीं ।'

दोनोंके आपसमें 'ना' 'ना' करते-करते बहुत विलम्ब हो गया । लोग दर्शकके रूपमें एकत्र हो गये । पुलिस-चौकीका सिपाही आ धमका ।

इतनेमें ही कुछ वृद्ध भक्त वहाँ आ गये । उन्होंने शान्त चित्तसे सारी स्थितिको समझ दोनों मित्रोंको अन्न बाँट देनेका निश्चय किया । परंतु भगवत्-कृपासे अन्नमें ऐसी बरकत आयी कि दोनोंका संतोष हो जानेके बाद भी अन्न बचा रहा । उन्हीं गेहूँकी बिक्री-से गाँवमें एक 'सत्संगभवन' का निर्माण कराया गया । जहाँ रात्रिको सब लोग एकत्र होकर तरह-तरहके भगवान्‌की लीलाओंके भजन ढोलक-मंजीरेपर गाया करते हैं । सप्ताहमें एक बार वहाँ बृहत् सत्संग होता है । साधु-संत, अभ्यागत, भिखारी, भूले-भटके, दीन-दुखी जब कभी आ जाते हैं, तभी इसी भवनद्वारा उनके भोजनादिकी व्यवस्था होती है । व्यवस्थापक निर्लोभी, धर्मात्मा और भगवत्परायण गाँवके ही वृद्धजन हैं, जो चंदेसे इसे सुचारु रूपसे चलाते हैं । यह क्रम चल ही रहा है ।

हिंदूराष्ट्रवाद और कुछ भ्रान्तियाँ

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

कुछ लोगोंका कहना है कि 'भारतमें हिंदुओंके अतिरिक्त मुसल्मान और ईसाई भी रहते हैं, अतः इसको हिंदूराष्ट्र घोषित नहीं किया जा सकता।' परंतु इस प्रकार कहनेवाले सज्जनोंके पास इसका क्या उत्तर है कि पाकिस्तानमें हिंदू और ईसाई रहते हैं, फिर उसे 'मुस्लिमराष्ट्र' कैसे घोषित कर दिया गया? ईरानमें सुन्नी, ईसाई और पारसी भी रहते हैं, फिर वह 'शियाराष्ट्र' क्यों है? इंगलैंडमें रोमन कैथलिक और यहूदी भी हैं, फिर वह 'एङ्गलिकनराष्ट्र' क्यों है। इटली, स्पेन तथा पुर्तगालमें प्रोटेस्टेण्टोंकी बड़ी संख्या है, फिर भी वे 'रोमन कैथलिकराष्ट्र' हैं। विश्वमें ऐसा कोई भी देश नहीं, जहाँ केवल एक ही धर्म अथवा एक ही जीवन-पद्धतिके अनुयायी हों, फिर भी विश्वके ९० प्रतिशत राष्ट्र 'धर्मसापेक्ष' हैं। मुसल्मानों और ईसाइयोंके आनेसे पूर्व भारत एक हिंदूराष्ट्र था। उनके आक्रमणोंके फलस्वरूप भारतका अपनी राष्ट्रीयताको नकार देना, इतिहासमें 'जिसकी लाठी उसकी भैंसवाले' सिद्धान्तको मान्यता प्रदान करना, आक्रान्ताओंका उत्साह बढ़ाना तथा संत्रस्त राष्ट्रके मनोबल-को तोड़ना है। यदि हिंदू भारतको हिंदूराष्ट्र घोषित करानेमें असफल रहते हैं तो इतिहास उन्हें क्षमा नहीं करेगा। उनका इतिहास न्याय और शौर्यके स्थानपर अन्याय और नपुंसकताका संदेशवाहक होगा।

कुछ लोगोंका कहना है कि 'धर्मसापेक्ष राष्ट्र युगधर्मके विरुद्ध है।' प्रथम तो यह बात गलत है। संसारके नब्बे प्रतिशत राष्ट्र धर्मसापेक्ष हैं और जो कम्युनिज्मको भी एक धर्म मान लिया जाय तो ९९ प्रतिशत राष्ट्र धर्मसापेक्ष निकलेंगे। और फिर, यदि धर्मसापेक्षता बुरी है तो भारत सरकारको उसके विरुद्ध प्रचारके लिये एक अलग विभाग खोल देना चाहिये तथा उन तमाम देशोंसे सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिये, जो धर्मसापेक्ष हैं। पञ्चशीलमें एक छठा शील यह और जोड़ देना चाहिये कि प्रत्येक राष्ट्र 'धर्मनिरपेक्ष' हो। भारत सरकारकी धर्मनिरपेक्षता सच्ची है या केवल हिंदूधर्मको नष्ट करनेका एक बहाना है। इसकी कसौटी यह है कि वह भारतमें रहनेवाले उन सब लोगोंको नागरिकताके अधिकारोंसे वञ्चित कर दे जो किसी भी धर्मसापेक्ष राष्ट्रसे भावात्मक एकता रखते हैं।

कुछ लोगोंने आपत्ति की है कि 'यदि भारत हिंदूराष्ट्र घोषित हो गया तो क्या फिर यहाँके मुसल्मान एवं ईसाइयों-को यहाँसे भागना पड़ेगा?' मैं उनसे पूछता हूँ कि 'इंगलैंडसे रोमनकैथलिक भागे या उन्हें बलात् एङ्गलिकन चर्चका अनुयायी बना लिया गया?' जब संसारके सभी धर्मसापेक्ष राष्ट्रोंमें अन्य धर्मावलम्बी आनन्दपूर्वक रह रहे हैं और मुसल्मानोंके अनुसार तो पाकिस्तानका हिंदू भी मौजें ले रहा है तो फिर एक हिंदूराष्ट्रपर ही ऐसी शङ्का क्यों की जाय कि वह मुसल्मानों तथा ईसाइयोंका उन्मूलन कर देगा, जब कि इतिहासकी साक्षी इसके विपरीत है। हिंदुओंने तो विधर्मियों-को उस समय भी शरण दी, जब धार्मिक अत्याचारोंसे इतिहासके पृष्ठ भरे जाते थे। जब ईसाइयोंका उत्पीडन चल रहा था तब, अबसे १९०० वर्ष पूर्व वे भागकर दक्षिण भारतमें आये थे। जेरुसलमका मन्दिर टूटनेपर यहूदी यहाँ भागकर आये। मुसल्मानोंकी ईरानविजयके पश्चात् पारसी यहाँ भागकर आये। शिया मुसल्मानोंके अनुसार यज़ीदके अत्याचारोंसे त्रस्त होकर हजरत इमामहुसैनने भारतमें शरण लेनेकी इच्छा प्रकट की थी, जो पूरी न हो सकी। मुगल सम्राट् हुमायूँकी बहिन गुलबदन बेगमने अपनी पुस्तक 'हुमायूँनामा'में लिखा है कि 'कर्बलाकी दुःखद घटनाके पश्चात् अनेक सैदानियाँ भागकर पटियाला आ गयी थीं।' जिस कालको हम मुस्लिमकाल कहते हैं, उसमें भी हिंदुओंके बड़े-बड़े स्वतन्त्र साम्राज्य थे—विजयनगर, मेवाड़, मरहट्ठा साम्राज्य—जिनमें बहुत बड़ी संख्या मुसल्मानों तथा ईसाइयों-की रहती थी, परंतु एक भी मुसल्मान, एक भी ईसाईने वहाँ सताये जानेकी शिकायत नहीं की। सिखोंकी अलबत्ता वे शिकायत करते रहे। मौलाना तुफैलअहमद अपनी पुस्तक 'मुसल्मानोंका रोशन मुस्तकबिल' (छठा संस्करण) में लिखते हैं कि "१८वीं सदीमें भारतके मुल्लाओंका एक सम्मेलन हुआ, जिसने घोषणा की कि 'राजपूतों तथा मरहट्ठोंके शासनमें मुसल्मानोंको हर प्रकारकी सुविधा है। अतः यहाँ जिहाद लाजिम नहीं आता। जिहाद केवल सिखोंके विरुद्ध होना चाहिये।'" सहिष्णुताका ही दूसरा नाम 'हिंदुत्व' है। ऐसी कल्पना करना भी घोर मूर्खता है कि भारतके हिंदूराष्ट्र घोषित होते ही यहाँ मुसल्मान एवं ईसाई समाप्त कर दिये

जायँगे। हाँ, उन्हें हिंदूजीवन-पद्धतिको नष्ट करने, हिंदू-संस्कारोंपर चोट पहुँचाने और अलग भाषा, अलग जिला, अलग प्रान्त, अलग देशके नामपर राष्ट्रको विखण्डित नहीं करने दिया जायगा। नैपाल एक हिंदूराष्ट्र है परंतु नैपालका मुसल्मान सुखपूर्वक रह रहा है। वहाँ वह न दंगा करता है, न उर्दू-आन्दोलन चलाता है। हिंदूराष्ट्रवादी विधर्मियोंके प्रति कितने सहिष्णु हैं, इसके कुछ उदाहरण मैं इतिहाससे देता हूँ।

कल्याण विजय करनेके पश्चात् वहाँके नये शासक आभाजी सोनदेवने पराजित सूबेदार मुल्ला अहमदकी पुत्र-वधूको पकड़कर शिवाजीके पास भेजा। पुत्रवधू किसी अज्ञात आशंकासे थर-थर काँप रही थी। शिवाजी परिस्थितिको भाँप गये और हँसकर कहने लगे—'भाई! बच्चा माँ-बापपर होता है। यदि हमारी माँ भी मुल्लाकी इस पुत्रवधू-जैसी सुन्दर होती तो हम भी सुन्दर होते।' शिवाजीने मेरी उपमा अपनी माँसे दी है। यह सुनकर मुल्लाकी पुत्रवधूके जीमें जी आया। शिवाजीने पाँच सौ अश्वारोहियोंकी रक्षामें बड़े सम्मानके साथ उसे उसकी ससुराल पहुँचा दिया। खाफी खाँ नामक तत्कालीन इतिहासकारने इस घटनाका उल्लेख करते हुए शिवाजीकी चारित्रिक उत्कृष्टताकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

—सर जदुनाथ सरकार

'औरंगजेबका लड़का अकबर राजपूतोंसे मिल गया था। औरंगजेबकी कूटनीतिने जब राजपूतोंके मनमें अकबरके प्रति संदेह उत्पन्न कर दिया तो वह राजपूतोंको छोड़कर चला गया, परंतु शीघ्रतामें अपनी लड़की सिफतुन्निसाको ले जाना भूल गया। जब यह लड़की औरंगजेबके पास पहुँची तो औरंगजेब उसकी शिक्षाके लिये किसी अच्छी-सी अध्यापिकाको खोजने लगा। इसपर सिफतुन्निसाने कहा—'मेरे कुरआन कण्ठाग्र है, दुर्गादासने अजमेरसे एक मुसल्मान अध्यापिका बुलाकर मुझे इस्लामी धर्मकी बहुत अच्छी शिक्षा दिलवायी है।' —सर यदुनाथसरकार

'एक युद्धमें अब्दुर्रहीम खानखानाकी बेगमोंको कुँअर अमरसिंहने पकड़ लिया। महाराणा प्रतापने जब यह सुना तो उन्होंने बड़े सम्मानके साथ उन्हें खानखानाके पास पहुँचा दिया।' —ओझाजी

'वास्को डिगामा आशा अन्तरीपका चक्कर काटकर कालीकटके जमोरिनसे मिला और वहाँ उसने पुर्तगालियोंकी कोठी स्थापित की। जब पुर्तगाली वहाँके मुसल्मानोंको सताने लगे तो जमोरिनने पुर्तगालियोंको अपने यहाँसे निकाल दिया। जब पुर्तगालियोंने कोचीनकी मस्जिद फूँक दी, तो जमोरिनने कोचीनपर आक्रमण कर दिया। इस अवसरपर जमोरिनने जो संदेश प्रसारित किया, उसके कुछ अंश सुनिये—'फिरंगियोंने हमारे पूर्वजोंकी भूमिपर हाथ बढ़ाया है। यह बात भी हमें इतनी कष्टकर और असहनीय न होती, यदि ये लोग इस देशके मुसल्मानोंको पीड़ा और कष्ट न देते। यह हमें बहुत बुरा लगता है। यद्यपि मैं हिंदू हूँ परंतु फिर भी मैं अपना कर्तव्य समझकर मुसल्मानोंके लिये अपने धन और जनको होम रहा हूँ।' —तारीख फरिश्ता

हिंदूराष्ट्रवादका अर्थ अन्य धर्मोंका उन्मूलन नहीं है, जैसा कि 'इस्लाम धर्मसापेक्ष' राष्ट्रोंका है या मध्ययुगमें 'ईसाई धर्मसापेक्ष' राष्ट्रोंका रहा है। हिंदूराष्ट्रवाद तुष्टि-करण, विभाजन और विघटनकारी प्रवृत्तियों तथा हिंदूधर्मके उन्मूलनके विरुद्ध है, जो 'धर्मनिरपेक्षिता'के नामपर चल रहे हैं।

सिख जो मर्यादाके विरुद्ध गये, उसका भी कारण है। मुस्लिम सम्राटोंने सिख गुरु अर्जुन, गुरु तेगबहादुर एवं गुरु गोविन्दसिंहके बच्चोंका बड़ी ही निर्दयतापूर्वक वध करा दिया था। इससे स्वाभाविक ही सिख उत्तेजित हो उठे थे। खानबहादुर शम्सुलउलेमा मौलवी जकाउल्ला अपनी पुस्तक तारीखे हिंदमें लिखते हैं—"ये सिख ऐसे जोशे मजहबसे भरे हुए थे कि हर कैदी जल्लादके तईं कहता कि पहले मुझे कत्ल कर। गर्ज जवाँमर्दीसे भरे और मजहबसे न फिरे" "जब इन सबका कत्ल हो चुका तो बाबा बन्दाकी बारी आयी, उसको ताशका लिबास (नौकरोंके वस्त्र) पहनाया गया और लाल पगड़ी बँधवायी गयी। लोहेके पिंजरेमें बंद किया गया और उसके रफीकों (साथियों) के सर नेजोंपर खड़े किये गये। एक बिल्ली उसकी पाली हुई थी, उसको भी एक नेजेपर लटकाया गया, ताकि बन्दाको यह मालूम हो जाय कि कोई चीज दुनियामें उसकी बाकी नहीं रही। जल्लाद नंगी तलवार लेकर सामने खड़ा हो गया। बाबा बन्दाके लड़केको उसकी गोदमें लिटाया गया और तेग़ उसके हाथमें देकर कहा गया कि 'बेटेको जिबह कर (हत्या कर)।' कोई कहता है कि उसने जिबह कर डाला। कोई लिखता है कि जब उसने इनकार किया तो जल्लादने उसके बेटेको मारकर उसके

लख्तेजिगरका कलेजा उसके मुँहपर मारा, फिर गर्म दस्त निपाहोंसे उसकी बोटियाँ नोच-नोचकर फेंक दीं, मगर बाबाका इस्तकलाल (धीरज) यह था कि उसने उफ़ नहीं की।''

इन्हीं भयानक अत्यन्त क्रूर अमानुषिक अत्याचारोंसे विचलित होकर सिखोंने कुछ उग्रता की। कालान्तरमें जब उनका क्रोध शान्त हो गया तो उन्होंने मुसल्मानोंके प्रति कोई क्रूरता नहीं दिखलायी, जिसका जीता-जागता प्रमाण महाराजा रणजीत-सिंहका शासन है।

कहा जाता है कि 'यदि भारत हिंदूराष्ट्र हो गया तो पहले तो हिंदू मुसल्मानों और ईसाइयोंको निकालेंगे और फिर सिख, सनातनी, जैन, बौद्ध, आर्यसमाजी, शैव, वैष्णव आपसमें एक दूसरेका रहना कठिन कर देंगे।' हमारा कहना यह है कि न तो हिंदूराष्ट्र मुसल्मानों एवं ईसाइयोंको निकालेगा और न हिंदुओंके विभिन्न मत-मतान्तर आपसमें एक दूसरेका रहना दूभर करेंगे। हिंदूराष्ट्रवादको मुस्लिम-राष्ट्रवाद तथा मध्ययुगीन ईसाई राष्ट्रोंकी तुलामें नापना ही भ्रम उत्पन्न करता है। यह सत्य है कि इस्लाम अमुस्लिमोंके प्रति असहिष्णु है और उसके शिया-सुन्नी एवं क़ादयानी सम्प्रदाय एक दूसरेको फूटी आँखों नहीं देख सकते और यह भी सत्य है कि मध्ययुगीन ईसाइयोंने भी यहूदियों एवं मुसल्मानोंपर अमानुषिक अत्याचार किये हैं तथा रोमनकैथलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट उसी प्रकार एक दूसरेके रक्तके प्यासे रहते थे, जैसे शिया-सुन्नी; परंतु हिंदुओंने तो कभी ऐसा नहीं किया।' फिर हिंदूराष्ट्रवादसे भय क्यों ? जैन सम्राट् चन्द्रगुप्तके पीछे वैदिक धर्मावलम्बी चाणक्यकी शक्ति काम करती थी। जैन सम्राट् सम्प्रति, खारवेल, अमोघवर्ष तथा कुमारपालने कब वैदिकोंपर अत्याचार किये ? बौद्धसम्राट् अशोकने पशुबलि बंद करा दी थी, इसे यदि आप धार्मिक अत्याचार कह सकते हैं तो इसे छोड़कर अशोक, कनिष्क एवं हर्ष-जैसे बौद्ध सम्राटोंने किसी दूसरे धर्मके अनुयायियोंको कब सताया ? वैदिकोंने कब जैनियों और बौद्धोंको सताया ? मेवाड़के शैव सम्राटोंके यहाँ कई जैन प्रधान मन्त्री हो गये हैं। विमलशाह, आसाशाह, भामाशाहके नाम वहाँके इतिहासमें अमर हैं। सिख नरेश रणजीतसिंहने काशीके विश्वनाथ-मन्दिरपर सोनेका कलश चढ़वाया था। हिंदूमत-मतान्तर एक-दूसरेके प्रति अत्यन्त सहिष्णु हैं। उन सबका इतिहास एक है, उनकी राष्ट्रीयता एक है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्'की, दुर्गा और कमलाका जैनधर्म, बौद्धधर्म एवं आर्यसमाजमें कोई स्थान नहीं, फिर भी यह गीत क्योंकि राष्ट्रीय गीत बन चुका था, उन्होंने उसके लिये मरने-मिटनेमें गर्वका अनुभव किया जब कि मुसल्मानोंने इसी आधारपर उसका विरोध किया। सिखोंमें मूर्त्तिपूजा नहीं है, फिर भी वे 'वन्दे मातरम्'के विरोधी नहीं बने। न ईसाइयोंने विरोध किया न पारसियोंने, न यहूदियोंने। विरोध किया, केवल मुसल्मानोंने। प्रश्न धर्मका नहीं, राष्ट्रीयताका है। भारत हिंदूराष्ट्रवादियोंका है, न कि हिंदूधर्मके अनुयायियोंका। हिंदुओंकी अपनी संस्कृति तथा परम्पराएँ हैं, जिनमें इस्लामी एवं मध्ययुगीन ईसाइयों-की धार्मिक असहिष्णुतावाली बातोंके लिये कोई स्थान नहीं।

मुझसे बहुत-से लोग कहते हैं कि 'आप जैनी होते हुए भी जैन उपकरणोंका प्रयोग न करके हिंदूराष्ट्रवाद जगानेके लिये सनातनी, आर्यसमाजी, सिख तथा बौद्ध उपकरणोंका क्यों प्रयोग करते हैं ?' उत्तर है कि 'हमें बिना किसी भेद-भावके उन सब उपकरणों एवं प्रतीकोंका प्रयोग करना है, जिनसे हम अधिक-से-अधिक व्यक्तियोंतक पहुँच सकें। सनातनी, जैन, सिख, आर्यसमाजी एवं बौद्ध सभीके प्रतीक और उपकरण हमारे हैं। हम केवल मूलको सींचनेके लिये जिसकी जितनी आवश्यकता समझते हैं, उतना उसका प्रयोग करते हैं। संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, हिंदी, गुजराती, मराठी, बँगला, असमिया, उड़िया, पंजाबी, सिन्धी, कश्मीरी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम इत्यादि सभी भाषाएँ हिंदूराष्ट्रकी हैं। इसी न्यायसे स्वामी दयानन्द और महात्मा गान्धीने गुजराती भाषाभाषी होते हुए भी हिंदीका सहारा लिया था, जिससे कि वे अपना संदेश अधिक-से-अधिक जनतातक पहुँचा सकें। समस्त आर्य विद्वानोंतक अपनी वाणी पहुँचा सकें तथा उसे स्थायित्व प्रदान कर सकें, इस न्यायसे जैन पण्डितोंने अपनी धर्म-भाषा प्राकृत होते हुए भी संस्कृतका आश्रय लिया था। जब राष्ट्रका जागरण करना होता है तो राष्ट्रीय चेतनाको देखा जाता है। जैनियोंकी संख्या बहुत थोड़ी है, जैन प्रतीकोंसे कुछ थोड़े ही लोगोंमें चेतना उत्पन्न की जा सकती है। अतः उन प्रतीकोंतक सीमित नहीं रहा जा सकता। भारतवर्षमें मुजफ्फरनगर जनपद जैनियोंका गढ़ माना जाता है। यहाँ भी यह दृश्य है कि इस जनपदके मोरचा-विकास

खण्डमें, जिसमें कि मैं रहता हूँ । ६० गाँवोंमें कुल ४ गाँवोंमें थोड़े-बहुत जैनी रहते हैं—तिस्सा, ककरौली, भोपा, बेड़ा सय्यदोंवाला । पहले जौलीमें भी जैनी थे, अब वहाँसे उजड़ गये हैं ।

एक यह भी दोषारोपण किया जाता है कि हिंदूराष्ट्रवाद कूपमण्डूकता तथा सङ्कीर्णताकी ओर ले जाता है । हिंदू-राष्ट्र कब कूपमण्डूक रहा ? जिन लोगोंने भारत-जैसे महा-देशको, जिसमें प्राचीन कालमें काबुल और कन्धार भी थे, सांस्कृतिक दृष्टिसे एक कर दिया, उन्हें कैसे कूपमण्डूक कहा जा सकता है ? जिन्होंने जावा, सुमात्रा, बाली, चम्पा और मलेयशियामें उपनिवेश स्थापित किये; चीन, जापान, कोरिया, लङ्कामें अपना धर्म फैलाया, वे कैसे कूपमण्डूक हो सकते हैं ? मंगोलियामें आज भी संस्कृत ग्रन्थ निकलते हैं । प्राचीन कालमें भारतका व्यापार रोम, मिस्र, यूनानके साथ चलता था । सर अलफ्रेंड लायलने लिखा है कि रोमन युगसे अबतक भारतीय व्यापार निरन्तर यूरोपका सोना-चाँदी खींचता रहा है । राबर्टसन महोदय लिखते हैं—'प्राचीन कालसे अबतक (१७९१ ई०) भारतीय वस्त्र अपनी बारीकी, जरदोजी, कशीदाकारी और उनपर छपे हुए बेल-बूटोंके सुन्दर रंगोंके कारण प्रसिद्ध रहा है । रोमनोंमें सबसे अधिक लोकप्रिय गहरा नीला रंग इण्डिकम—इण्डिया (भारत) से कहलाता था । भारतसे ही लाल रंग यूरोप आता था ।' ईसासे पूर्व पहली शतीके लेखक स्ट्रैबोने भारतीय रंगोंकी प्रशंसा की है । फरिश्ता लिखता है कि 'इस्लामसे पूर्व भारतके ब्राह्मण मक्केकी यात्राको आया करते थे । (मक्का-स्थित काबा वास्तवमें एक शिव-मन्दिर है । यहाँकी उपासना अब भी हिंदूपद्धतिके अनुसार होती है ।) आजसे २५,००० वर्ष पूर्व भारतीय ही अमेरिकामें जाकर बसे थे । इंगलैंडके अन्तर्गत वेल्स प्रदेशके निवासी आजसे ६,००० वर्ष पूर्व वहाँ जाकर बस जानेवाले भारतीय आर्योंकी ही संतान हैं । कूपमण्डूक हिंदूराष्ट्रवादी नहीं, धर्मनिरपेक्ष हैं, जिन्होंने समझ लिया है कि यूरोप, अमेरिका एवं चीनके बड़े नगरोंके अतिरिक्त न कहीं सत्य है, न सौन्दर्य; जो वर्तमानके बाहर भूतकी ओर झाँककर देखना भी पाप समझते हैं !

हिंदूराष्ट्रवाद मानवको सङ्कीर्णताकी ओर न ले जाकर उदारताकी ओर ले जाता है । जहाँ मध्ययुगीन ईसाइयोंने गैलीलियोंके यह कहनेपर कि 'सूर्य स्थिर है और पृथ्वी घूमती है ।'—उन्हें अमानवीय यन्त्रणाएँ दीं और जहाँ यही कहनेपर इस बीसवीं शतीमें भी अरबमें वैज्ञानिकोंको दण्डित किया जा सकता है । वहाँ हिंदू पृथ्वीको अचल तथा घूमनेवाली माननेवाले दोनों ही प्रकारके ज्योतिषियोंको समुचित प्रतिष्ठा देते आये हैं । अफ़गानिस्तानमें एक कादयानीको इसलिये ढेले मार-मारकर मार दिया गया कि वह मुहम्मद साहबको अन्तिम पैगम्बर नहीं मानता था, वहाँ भारतमें वेदोंको स्वीकार न करनेवालोंको भी अपने विचारोंके प्रचारकी सदैव पूर्ण स्वतन्त्रता रही है । वास्तवमें सङ्कीर्ण तो धर्मनिरपेक्ष हैं, जो रामनवमी और कृष्णाष्टमीसे चिढ़ते हैं । हिंदूराष्ट्रवादी तो गान्धी या नेहरूके जन्म-दिवससे नहीं चिढ़ते, वे तो ईसा और मुहम्मदके जन्म-दिवसको भी स्वीकार करनेके लिये तैयार हैं । सङ्कीर्ण कौन जो दशहरा और दीवालीके साथ ईद और मुहर्रमको भी स्वीकार करता हो या वह जो रक्षा-बन्धन और होली-तकको मिटाना चाहता हो ? आर्यजीवनकी समस्त उपलब्धियाँ, जिन्हें स्वयं अज्ञेयने मानवकी सर्वोच्च उपलब्धियाँ स्वीकार किया है, धर्मनिरपेक्षिताके नामपर उन्हीं वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता, संस्कृत, देवनागरी, हिंदी, आयुर्वेद, ज्योतिष, योग, भारतीय सङ्गीत और भारतीय प्रतीकोंकी जड़ काटी जा रही है । उत्तरप्रदेशके हाईस्कूल पाठ्यक्रममें नैतिक शिक्षाके अन्तर्गत पहले रामायण, महाभारत एवं गीताका उल्लेख था । अब १९७० वाले पाठ्यक्रममें इन्हें हटा दिया गया है । फिर बतलाइये सङ्कीर्ण कौन है जो मुहम्मदगोरीकी दिल्ली-विजयसे पहलेके सारे भारतीय इतिहासको नकारते हैं वे या जो अग्निमीळे जात-वेदासे लेकर अबतकके सारे भारतको अपना समझते हैं । हजरत अमीर खसरो और फैजीको भी, जो लोग मुहम्मद बिनकासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, तैमूर, बाबरसे एकात्मता अनुभव करते हैं और राष्ट्रकी रक्षा-के लिये अपने प्राणोंको होमनेवाले राजा दाहिर, पृथ्वीराज, हम्मीर, कुम्भ, साङ्गा, प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, हरिहर बुक्क, राजा हेमचन्द्रका नाम लेना भी पाप समझते हैं वे कैसे उदारमना हैं । क्या राष्ट्रद्रोह और धर्मनिरपेक्षिता एक ही अर्थके वाचक हैं ? बख्शी गुलाम मुहम्मदने धर्मनिरपेक्षिता-के हितमें राणा प्रताप, शिवाजी और गुरुगोविन्दसिंहको भुला देनेके लिये कहा है । जिस समय तिहाड़ जेलमें गोरक्षाग्रहियोंपर जो डंडे बरसाये गये थे, उससे घायल

होनेवाले तपःपूत संन्यासियोंको देखने श्रीचह्वाण जेलमें गये थे तो कांग्रेसकी नाककी बाल जमइयतुलउलमाएँ हिंदके मुखपत्र 'अलजमईयतने' श्रीचह्वाणके इस कामको धर्मनिरपेक्षिताके विरुद्ध बतलाया था। इससे सिद्ध हुआ कि धर्मनिरपेक्षिता न केवल असहिष्णुता, कूपमण्डूकता, सङ्कीर्णता, राष्ट्रद्रोहका ही पर्यायवाची है, अपितु वह निष्ठुरता एवं अमानवीय क्रूरताके लिये भी प्रयुक्त होता है। धर्मनिरपेक्षिताके और चमत्कार सुनिये। मुस्लिम कालमें ऐसा नियम था कि अमुस्लिम तो मुसल्मान बनाया जा सकता था, अपितु राज्य उसे प्रोत्साहन देता था परंतु एक बार मुसल्मान बन जानेके पश्चात् फिर वह व्यक्ति इस्लाम धर्मको छोड़कर कोई अन्य धर्म स्वीकार नहीं कर सकता था, यहाँतक कि अपना पूर्व धर्म भी नहीं। अंग्रेजने आकर इस अन्यायपूर्ण कानूनको हटा दिया, परंतु मुसल्मान उसे क्रियात्मक रूप नहीं देने देते थे। स्वामी श्रद्धानन्द इस अन्यायके विरुद्ध लड़े और एक मुसल्मानने उनकी हत्या कर दी। अब हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकार स्वामी श्रद्धानन्दकी झाँकी दिखाये जानेका भी विरोध करती है; क्योंकि उन्होंने इस्लामी शरअका उल्लङ्घन किया था और जो व्यक्ति इस्लामी शरअका उल्लङ्घन करे, भले ही वह ऐसा करते हुए अपने कानूनसम्मत अधिकारका उपयोग कर रहा है, धर्मनिरपेक्ष नहीं कहला सकता। इस्लाममें उसकी हत्या उचित है तो हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकार उसका नाम मिटा देना भी उचित समझती है। वास्तवमें धर्मनिरपेक्षाकी रट भारतमें वे समुदाय लगा रहे हैं जिन्हें धर्मनिरपेक्षतामें किञ्चित् भी विश्वास नहीं। ये तत्त्व भारतको कम्युनिष्ट राष्ट्र अथवा इस्लामी राष्ट्र बनानेके लिये प्रयत्नशील हैं और अपने मार्गमें हिंदूराष्ट्रवादको सबसे बड़ा बाधक समझते हैं। ये लोग जहाँ हिंदी-संस्कृतमें भूषण और सरस्वतीके पाठ हटवाना चाहते हैं, वहाँ उर्दू-फारसीसे इकबाल और बिसमिल्लाह अलरहमान अलरहीम व हम्दोनातको हटानेकी उनके पास कोई योजना नहीं, अलजमईयतने दिल्ली प्रशासनकी इसलिये आलोचना की थी कि हाईस्कूल परीक्षाके प्रश्नपत्रमें खलीफाओंकी जीवनीपर कोई प्रश्न क्यों नहीं था। १३-१२-६८के शुक्रवार साप्ताहिक संस्करणमें एक पाठकने अलजमईयतके सम्पादकसे प्रश्न किया था कि 'यदि भारतमें इस्लामी राज्य स्थापित हो गया तो क्या यहाँपर शरई शासन लागू होगा।' सम्पादकने उत्तर दिया 'यदि ऐसा हुआ तो मुसल्मानोंपर शरई अहकाम लागू किये जायँगे।' इस प्रश्नके उत्तरमें क्या ऐसी स्थितिमें अमुस्लिमोंपर फिर जजिया लगाया जायगा और दास-प्रथा फिर पुनर्जीवित की जायगी? सम्पादकने कोई उत्तर नहीं दिया, अब धर्मनिरपेक्ष सोचें—यह धर्मनिरपेक्षिता देशको कहाँ ले जाकर पटकेगी। 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहितः।'

सबमें भगवान् देखनेवाला हिंदू-धर्म

सकल चराचर विश्वमें भरे एक भगवान्।
सभी उन्हींके रूप हैं अग-जग तुच्छ महान्॥
सबका जो आदरसहित करता नित सम्मान।
नित स्वकर्मसे पूजता, करता सुख-हित दान॥
पूजा यों करता सदा जो मानव मतिमान।
अति प्रसन्न हो प्रभु उसे देते प्रेम अमान॥
एक आत्मा सभीमें, सबका आत्मा स्थान।
करता हिंदू धर्म इस परम सत्यका गान॥
सब व्यवहारिक भेदमें रखता भाव समान।
सबका वह करता सदा स्वाभाविक कल्याण॥

श्रीबगलामुखी देवीकी उपासना

(लेखक——ब्रह्मचारी श्रीपागलानन्दजी उपनाम पं० श्रीयज्ञदत्तजी शर्मा, 'वानप्रस्थी', वैद्य)

[गतवर्ष पृष्ठ १३६३ से आगे]

षष्ठ आवरण

तदनन्तर षोडशदल-कमलके सोलह दलोंपर अपने सामनेसे प्रदक्षिण-क्रमसे मङ्गला आदि सोलह देवियोंकी पूजा करे। पहले **'मङ्गलादिषोडशदेवताभ्यो नमः'** इस प्रकार पुष्पाञ्जलि दे। क्रमशः निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे पूजन करे—

ॐ अं मङ्गलाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ आं स्तम्भिन्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ इं श्रीजृम्भिण्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ ईं मोहिन्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ उं वश्याम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ ऊं चञ्चलाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ ऋं बलाकाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ ॠं भूधराम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ लृं कल्माषाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ ॡं धात्र्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ एं कमलाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ ऐं कालकर्षिण्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ ओं भ्रामिकाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ औं मन्दगमनाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ अं भोगस्थाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ अः भाविकाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इस प्रकार पूजन करके—**'एता मङ्गलादिषोडशदेवताः समुद्राः ससिद्धयः सवाहनाः सायुधाः साङ्गाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजितास्तर्पिताः सन्तु'** ऐसा कहकर तीन बार पुष्पाञ्जलि दे। फिर सामान्यार्घपात्रसे जल लेकर—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठमावरणार्चनम्॥

ऐसा कहकर पूजा समर्पित करे तथा योनिमुद्रा-प्रदर्शनपूर्वक प्रणाम करे।

इस प्रकार छठे आवरणकी पूजा पूरी हुई।

सप्तम आवरण

तदनन्तर चतुरस्रकी प्रथम रेखापर कल्पित पूर्वादि प्रदक्षिण-क्रमसे चार दिशाओंमें और ईशानकोणमें गणेशादि पञ्च देवताओंकी पूजा करे। पहले **'गणेशादिपञ्चदेवताभ्यो नमः'** ऐसा कहकर पुष्पाञ्जलि दे। तत्पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे पूजा-कर्म सम्पादित करे।

ॐ गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वरवरदसर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा।

श्रीहरिद्रागणपतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ वं वटुकनाथश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ यां योगिन्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ क्षं क्षेत्रपालश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ सं सोमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(ईशाने)

इस प्रकार पूजन करके—**'एता गणेशादिदेवताः समुद्राः ससिद्धयः सवाहनाः सायुधाः साङ्गाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजितास्तर्पिताः सन्तु'** ऐसा कहकर तीन बार पुष्पाञ्जलि दे और सामान्यार्घपात्रसे जल लेकर—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्॥

ऐसा कहकर पूजा समर्पित करनेके पश्चात् योनिमुद्रा दिखाकर प्रणाम करे।

इस प्रकार सातवें आवरणकी पूजा पूरी हुई।

अष्टम आवरण

तदनन्तर चतुरस्रकी द्वितीय रेखापर यथास्थित पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिण-क्रमसे इन्द्र आदि दस दिक्पालोंकी पूजा करे। पहले—

'इन्द्रादि दशदिक्पालेभ्यो नमः'

इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि देकर निम्नाङ्कित क्रमसे पूजन आरम्भ करे।

ॐ लं इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(पूर्वायाम्)
ॐ रं अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
(आग्नेय्याम्)

ॐ टं मं यमं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(दक्षिणस्याम्)

ॐ क्षं निर्ऋतिं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(नैर्ऋत्ये)

ॐ वं वरुणं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(प्रतीच्याम्)

ॐ यं वायुं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(वायव्ये)

ॐ सं सोमं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(उदीच्याम्)

ॐ ईं ईशानं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(ईशाने)

ॐ ब्रं ब्रह्माणं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(पूर्वेशानयोर्मध्ये)

ॐ ह्रीं अनन्तं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(नैर्ऋत्यवारुण्योर्मध्ये)

इस प्रकार पूजन करके—

'एताः इन्द्रादि दश दिग्देवताः समुद्राः ससिद्धयः सवाहनाः सायुधाः साङ्गाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजितास्तर्पिताः सन्तु'

यों कहकर तीन बार पुष्पाञ्जलि दे । फिर सामान्य अर्घ्यपात्रसे जल लेकर—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यमष्टमावरणार्चनम् ॥

यों कहकर पूजा समर्पित करे तथा योनि-मुद्राके प्रदर्शनपूर्वक प्रणाम करे ।

इस प्रकार आठवें आवरणकी पूजा पूरी हुई ।

नवम आवरण

तदनन्तर चतुरस्रकी तीसरी रेखापर इन्द्राद दस दिक्पालोंके स्थानोंपर वज्रादि आयुध-देवताओंकी पूजा करे । पहले 'वज्राद्यायुधदेवताभ्यो नमः' इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि देकर निम्नाङ्कित क्रमसे पूजन प्रारम्भ करे—

ॐ वज्रं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(पूर्वस्याम्)

ॐ शं शक्तिं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(आग्नेय्याम्)

ॐ दं दण्डं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(दक्षिणस्याम्)

ॐ खं खड्गं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
(नैर्ऋत्ये)

ॐ पं पाशं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(पश्चिमस्याम्)

ॐ अं अङ्कुशं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(वायव्ये)

ॐ गं गदां श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(उत्तरस्यां)

ॐ त्रिं त्रिशूलं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(ईशाने)

ॐ पं पद्मं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(पूर्वेशानयोर्मध्ये)

ॐ चं चक्रं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
(नैर्ऋत्यवारुण्योर्मध्ये)

इस प्रकार पूजन करके 'एताः वज्राद्यायुधदेवताः समुद्राः ससिद्धयः सवाहनाः सायुधाः साङ्गाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' यों कहकर तीन बार पुष्पाञ्जलि दे । फिर सामान्य अर्घ्यपात्रसे जल लेकर—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चनम् ॥

यों कहकर पूजा समर्पित करे तथा योनिमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक प्रणाम करे ।

इस प्रकार नवें आवरणकी पूजा पूरी हुई ।

द्वार देवता-पूजा

तदनन्तर पूर्वादि दिशाओंके चार द्वारोंपर प्रदक्षिण-क्रमसे जया आदि देवियोंका पूजन करे । यथा—(पूर्वमें) 'जयां श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' यों कहकर जयाकी पूजा करे । (दक्षिण द्वारपर) 'विजयां श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' यों कहकर विजयाकी अर्चना करे । फिर (पश्चिम द्वारपर) 'अजितां श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' यों कहकर अजिताकी तथा (उत्तर द्वारपर) 'अपराजितां श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' यों कहकर अपराजिताकी पूजा करे ।

इस प्रकार पूजाके अनन्तर मूलमन्त्रसे तीन बार देवीका पूजन एवं संतर्पण करके मूलमन्त्र पढ़कर—**'साङ्गां सपरिवारां सवाहनां सायुधां श्रीमत्त्रिशूलनाथसहितां श्रीबगलामुखीं श्रीपादुकां पूजयामि'** यों बोलकर तीन बार पूर्ववत् पूजन एवं संतर्पण करनेके पश्चात् गन्ध आदि उपचार चढ़ाये।

गन्ध

गन्ध, चन्दन, अगुरु, कपूर और कस्तूरी आदि-से युक्त पञ्चविध गन्ध लेकर उसका प्रोक्षण करे। फिर मूल मन्त्र पढ़कर—

परमानन्दसौरभ्य परिपूर्णं दिगन्तरे।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि॥

'परमेश्वरि! आपने परमानन्दमय सुगन्धसे सम्पूर्ण दिगन्तरालोंको व्याप्त कर रक्खा है। अब कृपापूर्वक मेरे दिये हुए इस उत्तम गन्धको स्वीकार करें।'

यों कहकर—

'साङ्गायै सपरिवारायै सायुधायै सशक्तिकायै श्रीत्रिशूल-नाथपरशिवसहितायै श्रीबगलामुख्यै श्रीपादुकायै गन्धं परिकल्पयामि नमः।'

—इस वाक्यको पढ़कर कनिष्ठिका और अङ्गुष्ठके योगसे गन्धमुद्राका प्रदर्शन करके योनिमुद्रा दिखाकर प्रणाम करे।

पुष्प

तदनन्तर बहुविध पुष्प लेकर उनका प्रोक्षण करे। फिर मूलमन्त्र पढ़कर—

तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमनोहरम्।
अमन्दसौरभं पुष्पं गृहाणेदमनुत्तमम्॥

'देवि! तुरीयावस्थारूप चैतन्य वनसे उत्पन्न तथा नाना-विध गुणोंसे मनोहर यह परम उत्तम दिव्य पुष्प, जिसकी गन्ध कभी मन्द नहीं पड़ती, मैं आपको अर्पित करता हूँ। आप कृपापूर्वक इसे ग्रहण करें।'

'साङ्गायै सपरिवारायै सायुधायै सशक्तिकायै श्रीत्रिशूल-नाथपरशिवसहितायै श्रीबगलामुख्यै श्रीपादुकायै पुष्पाणि परिकल्पयामि वौषट्।'

यों कहकर तर्जनी और अङ्गुष्ठके योगसे पुष्पमुद्राका प्रदर्शन करके योनिमुद्रा दिखाकर प्रणाम करे। (फूलको ऊर्ध्वमुख करके चढ़ाना चाहिये।)

धूप

धूपदानीके द्वारा धूप जलानेके लिये अङ्गार ले आकर **'फट्'** इस बीजका उच्चारण करके उसका प्रोक्षण करे। फिर धेनु-मुद्रा द्वारा अमृतीकरण करके गुग्गुल आदिका धूप देकर बायें हाथमें घंटा लेकर धेनु-मुद्राद्वारा अमृतीकरण करके पुष्प आदिसे उसकी पूजा करे। फिर **'जयध्वनि मातः स्वाहा'** यों बोलकर बायें हाथसे घंटा बजाते हुए दाहिने हाथसे धूपपात्र पकड़ ले और मूल मन्त्र पढ़कर—

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

'देवि! यह उत्तम गन्ध धूप वनस्पतिके रससे प्रकट हुआ है। इसमें बहुत उत्तम गन्ध संचित है। यह सम्पूर्ण देवताओंके सूँघने योग्य है। आप इसे स्वीकार करें!'

'साङ्गायै सपरिवारायै सायुधायै सशक्तिकायै श्रीत्रिशूल-नाथपरशिवसहितायै श्रीबगलामुख्यै श्रीपादुकायै धूपं परिकल्पयामि नमः।'

यों बोलकर शङ्खका जल गिराये और तर्जनी-अङ्गुष्ठके योगसे धूप-मुद्राका प्रदर्शन करके धूपपात्रको देवीके वाम भागमें रख दे और योनि-मुद्रा दिखाकर प्रणाम करे।

दीप

तत्पश्चात् दीपपात्रमें घी भरकर उसमें रूईकी बनी हुई बत्ती डाल दे और उसे प्रज्वलित करके धेनुमुद्राद्वारा उसका अमृतीकरण एवं सम्यक् पूजन करे। तदनन्तर मूलमन्त्र पढ़कर पूर्ववत् घंटा बजाते हुए दीपपात्र हाथमें लेकर मूलमन्त्रके अन्तमें—

सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

'देवि! यह महान् दीप उत्तम प्रकाश विखेरनेवाला है। इससे सर्वत्र तमका निवारण होता है। यह बाह्य और आभ्यन्तर ज्योतिका प्रतीक है, आप इस दीपको ग्रहण करें।'

'साङ्गायै सपरिवारायै सायुधायै सशक्तिकायै श्रीत्रिशूल-नाथपरशिवसहितायै श्रीबगलामुख्यै श्रीपादुकायै दीपं परिकल्पयामि नमः।'

इस मन्त्रसे शङ्खका जल गिराकर मध्यमा और अङ्गुष्ठके योगसे दीप-मुद्राका प्रदर्शन करके दीपपात्रको देवीके दक्षिणभागमें रख दे। फिर योनि-मुद्रा दिखाकर प्रणाम करे।

नैवेद्य

तदनन्तर देवीके सामने चौकोर मण्डल बनाकर रत्न-जटित सोनेकी थालीमें नाना प्रकारका परम उत्तम षड्रस-सम्पन्न व्यञ्जनमय पाँच प्रकारका नैवेद्य ले आये। उसको उसी मण्डलके भीतर किसी आधारपर रख दे। फिर मूलमन्त्र पढ़कर उसकी ओर देखे। कुशोंद्वारा तीन बार संताड़न करे। फिर कवच मन्त्र (हुं) का उच्चारण करके उसका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् 'ॐ सः जूं वौषट्' इस मन्त्रसे तीन बार अभिमन्त्रित करके सम्प्रोक्षण करे। फिर अस्त्र-मन्त्रसे चक्र-मुद्रा दिखाकर बायें हाथसे स्पर्श न करते हुए मन-ही-मन भावना करे कि यह अन्न सर्वथा दोषरहित है। फिर 'वं' इस अमृत बीजका उच्चारण करके धेनु-मुद्राद्वारा अमृतीकरण करे और आचमन देकर बायें अङ्गुष्ठसे नैवेद्य-पात्रका स्पर्श करते हुए मूलमन्त्र पढ़कर निम्नाङ्कित श्लोक पढ़े—

हेमपात्रगतं दिव्योपमानं सुपरिष्कृतम्।
पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वरि॥

'परमेश्वरि! यह छः रसोंसे युक्त पाँच प्रकारका दिव्य नैवेद्य सोनेकी थालीमें परोसा गया है। इसे बहुत अच्छी तरह छौंक-बघारकर सुन्दर स्वादिष्ट रूपमें तैयार किया गया है। आप इसे अङ्गीकार करें।' यों कहकर—

'साङ्गायै सपरिवारायै सायुधायै सशक्तिकायै श्रीत्रिशूलनाथपरशिवसहितायै श्रीबगलामुख्यै श्रीपादुकायै नैवेद्यं परिकल्पयामि नमः।'

इस वाक्यका उच्चारण करके देवीके हाथमें जल दे और **'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'** यों कहकर देवीको वह जल पिलाये। तत्पश्चात् बायें हाथसे ग्रास-मुद्राका प्रदर्शन करके दाहिने हाथसे प्राणादि पाँच मुद्राओंका प्रदर्शन करे। यथा—

ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा। ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा इति।

इसके बाद **'ॐ ह्रीं आत्मतत्त्वव्यापिनी श्रीबगलामुखी तृप्यतु। ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वव्यापिनी श्रीबगलामुखी तृप्यतु। ॐ ह्रीं शिवतत्त्वव्यापिनी श्रीबगलामुखी तृप्यतु।** यों कहकर मूलमन्त्रका उच्चारण करे, फिर निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर देवीको पुष्पाञ्जलि दे—

पुष्पाञ्जलि

चित्पात्रे सद्धविः सौख्यं विविधानेकभक्ष्ययुक्।
निवेदयामि ते देवि सानुगायै पुषाण वै॥

'देवि! चिन्मय पात्रमें सत्स्वरूप आनन्दमय हवि प्रस्तुत है। इसके साथ अनेक प्रकारके बहुसंख्यक भक्ष्य पदार्थ हैं। यह सब अनुचरोंसहित आपको मैं अर्पित करता हूँ। आप इसे ग्रहण करके हृष्टपुष्ट हों।'

इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि देकर जल समर्पित करे।

जलसमर्पण

सोनेके पात्रमें रक्खे हुए जलको कर्पूर आदिसे सुवासित करके धेनु-मुद्राद्वारा अमृतीकरण करे। फिर मूलमन्त्र पढ़कर—

नमस्ते देवि देवेशि सर्वतृप्तिकरं परम्।
अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्॥
अमृतानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम्॥

'देवदेवेश्वरि! आपको नमस्कार है। यह शुद्ध, प्रकृतिस्थ एवं परम शीतल उत्तम जल आपकी सेवामें समर्पित है। यह सबके लिये परम तृप्तिकारक तथा अमृतानन्दसे परिपूर्ण है। यह जल आपके सिवा और किसीको निवेदित नहीं किया गया है। आप इसे ग्रहण करें।' यों कहकर देवीको जल निवेदित करे और घंटा बजाये। फिर भावना करे कि इष्टदेवी अपने परिवार-गणोंके साथ भोजन कर रही हैं।

भोजनकालमें देवीका ध्यान

ब्रह्मेशाद्यैः सरसमभितः सूपविष्टा समन्तात्
शिञ्जद्वालव्यजननिकरैः वीज्यमाना सखीभिः।
नर्मक्रीडाप्रहसनपरा पङ्क्तिभोक्त्रीर्हसन्ती
भुङ्क्ते पात्रे कनकघटिते षड्रसांश्चिद्विलासा*॥ १॥
शालीभक्तं समुद्गं शिशिरकरमितं पायसापूपयुक्तं
लेह्यं पेयं च चोष्यं श्रुतममृतफलं पाकपूर्णं सुखाद्यम्।
आज्यं प्राज्यं सभाज्यं नयनरुचिकरं रम्भिजैलामरिच्यं
स्वाद्वाढ्यं शाकराजीपरिकरममृताहारजोषं जुषस्व॥ २॥

चिद्विलासस्वरूपा अथवा पीताम्बरा देवी बगलामुखी सुवर्णनिर्मित पात्रमें परिवेशित षड्रस भोजनको आरोग रही हैं। वे एक सुन्दर आसनपर बैठी हैं

* 'षड्रसान् पीतवस्त्रा' ऐसा पाठ कहीं-कहीं मिलता है।

और उनके चारों ओर ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता विराजमान हैं । सभी लोग इस भोजनगोष्ठीमें रस ले रहे हैं। सखियाँ खनखनाते हुए वाल्व्यजन (चँवर) डुलाकर देवीकी सेवा कर रही हैं । देवी नर्मवचन, क्रीडा तथा प्रहसन (हास-परिहास) में भी भाग ले रही हैं और पङ्क्तिमें भोजन करनेवाली सहचरियोंको हँसाती रहती हैं ॥ १ ॥

भक्त कहता है—'देवि ! यह शाली (अगहनी धान) के चावलका भात है, जो चन्द्रमाके समान चमक रहा है। इसके साथ मूँगकी दाल, खीर और पूआ भी है। साथ ही नाना प्रकारके लेह्य, पेय तथा चोष्य पदार्थ भी प्रस्तुत हैं । इतना ही नहीं, पका हुआ अमृत फल भी विद्यमान है, जो खानेमें सुस्वादु है। घी प्रचुर मात्रामें विद्यमान है। अतएव यह सेव्य है। नेत्रोंसे इसकी ओर देखते ही भोजनकी रुचि बढ़ जाती है। इसमें हल्दी, इलायची तथा मिर्च आदि मसाले भी पड़े हुए हैं, जिससे इसका स्वाद बहुत बढ़ गया। तरह-तरहके शाकोंका समूह इसकी उपयोगिताको बढ़ा रहा है। जैसे अमृतमय आहारका सेवन किया जाता है, उसी प्रकार आप इस प्रस्तुत भोजनको रुचिके साथ ग्रहण करें' ॥ २ ॥

इस प्रकार ध्यान करके भोजनके अवसरपर कुछ मूलमन्त्रका जप करे । फिर **'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वम्'** इत्यादि श्लोक पढ़कर देवीके हाथमें वह जप समर्पित करे। फिर यह भावना करे कि देवी भोजन करके पूर्ण तृप्त हो गयी हैं। तत्पश्चात् **'अमृतापिधानमसि स्वाहा'** यों बोलकर उत्तरापोशन (आचमन) अर्पित करे। फिर निस्सार नैवेद्यको नैर्ऋत्यकोणमें रख दे। इसके बाद हाथोंकी शुद्धिके लिये सुगन्धित चूर्ण देकर कुल्ला कराये । दाँतोंकी शुद्धि करके पुनः कुल्ला करनेके लिये जल दे। फिर पैर धुलाये, आचमन कराये और योनिमुद्रा दिखाकर प्रणाम करे ।

ताम्बूल-समर्पण

तदनन्तर कर्पूर आदि नाना प्रकारके सुगन्धसे मिश्रित ताम्बूल ले आकर मूलमन्त्रके अन्तमें निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर ताम्बूल अर्पित करे ।

तमालदलकर्पूरपूगभागतरङ्गितम् ।
संशोधितं सुगन्धि च ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

'देवि ! सुरतीके पत्ते, कपूर और कत्था-सुपारीके यथोचितभागसे तरङ्गित, संशोधित एवं सुगन्धित यह पानका बीड़ा ग्रहण कीजिये ।'

'साङ्गायै सपरिवारायै सायुधायै सशक्तिकायै श्रीत्रिशूलनाथपरशिवसहितायै श्रीबगलामुख्यै श्रीपादुकायै ताम्बूलं परिकल्पयामि नमः'

यों कहकर शङ्खसे जल गिराये और योनिमुद्रा दिखाकर प्रणाम करे ।

फिर मूलमन्त्रका उच्चारण करके—**'सुप्रसन्नां श्रीबगलामुखीं श्रीपादुकां पूजयामि'** यों बोलकर तीन बार पूजन तथा संतर्पण करके योनिमुद्रा-प्रदर्शनपूर्वक प्रणाम करे ।

देवीके अस्त्रोंकी पूजा

तदनन्तर देवीके अस्त्रोंकी पूजा करे । उसका क्रम इस प्रकार है—'दाहिने भागके ऊपरवाले हाथमें' **'ॐ मुं मुद्गरं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः'** 'इसी तरह दाहिने भागके नीचेवाले हाथमें' **'ॐ पां पाशं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः'** 'बायें भागके ऊपरवाले हाथमें' **'ॐ रिं रिपुजिह्वां श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः'** 'बायें भागके नीचेवाले हाथमें' **'ॐ वं वज्रं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः'**—इन मन्त्रोंसे गन्धादि उपचारोंद्वारा आयुध-देवताओंका पूजन करे । तत्पश्चात् देवीको पेय द्रव्य अर्पित करे ।

देवीको पेयद्रव्य-समर्पण

कलशसे सुवर्ण आदिके पात्रमें पानीय द्रव्य लेकर मूलमन्त्रसे उसको तीन बार अभिमन्त्रित करे। फिर धेनुमुद्राद्वारा अमृतीकरण करके मूलमन्त्र पढ़कर—

'साङ्गायै सपरिवारायै सायुधायै सशक्तिकायै श्रीत्रिशूलनाथपरशिवसहितायै श्रीबगलामुख्यै श्रीपादुकायै इदं पानीयद्रव्यं शुद्धिसहितं परिकल्पयामि नमः' यों कहकर देवीको पानीय द्रव्य समर्पित करे। फिर कर्पूरादियुक्त ताम्बूल देकर नीराजन करे ।

नीराजन

नीराजनकी विधि इस प्रकार है—पाँच दीप प्रज्वलित करके 'नमः' इस मन्त्रसे उनका पूजन करे। फिर धेनुमुद्रा-द्वारा अमृतीकरण करके मूलमन्त्रसे पुष्प देकर घण्टा बजाते हुए देवीका सात बार नीराजन करे। नीराजन-मन्त्र निम्नाङ्कित है—

समस्तचक्रचक्रेशि नुते देवैर्नवात्मिके।
आरार्तिकमिदं देवि गृहाण परमेश्वरि॥

'देवि परमेश्वरि! आप समस्त चक्रोंकी चक्रेश्वरी हैं। देवता आपकी वन्दना करते हैं। आप नित्य नूतनरूपसे सुशोभित हैं। यह आरार्तिक (नीराजन) ग्रहण करें।'

इस प्रकार नीराजन करके मूलमन्त्रसे पुष्पाञ्जलि दे योनिमुद्रा-प्रदर्शनपूर्वक प्रणाम करे।

प्रदक्षिणा

देवीके लिये एक सौ आठ अथवा चौवन या दस अथवा पाँच बार यथाशक्ति परिक्रमा देकर मूलमन्त्रसे साष्टाङ्ग प्रणाम करे और वैदिक स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करके बलि अर्पित करे।

राजस्थानमें अकालपीड़ितोंकी सेवा

राजस्थानमें अकालपीड़ित गौओं और मनुष्योंकी बड़ी दुर्दशा है। जबतक भगवान्की कृपासे वर्षा होकर घास तथा अन्न न हो जाय, तबतक दुर्दशाका अन्त नहीं होगा। वर्षा न हुई तो वहाँके जलविहीन स्थानोंमें—जहाँ केवल वर्षाके जलसे भरे तालाबों और कुण्डोंपर ही सबका जीवन आश्रित है और जो इस समय प्रायः सूख रहे हैं— आनेवाले गरमीके दिनोंमें वहाँ जलकी बड़ी कठिन समस्या हो जायगी और वाहनोंद्वारा दूर-दूरसे पानी न पहुँचाया जायगा तो वहाँके मनुष्य और पशु प्यासे मर जायँगे। इसके लिये अभीसे व्यवस्था करना आवश्यक है।

अभी पीड़ित गोजातिके पशु तथा मानवोंकी प्राण-रक्षाके लिये विभिन्न स्थानोंमें, विभिन्न संस्थाओंद्वारा तथा व्यक्तिगत रूपसे सराहनीय सेवाकार्य चल रहा है। राजस्थान सरकारकी ओरसे भी सहायताकार्य चल रहा है। जिन केन्द्रोंमें नियतरूपसे गौएँ रखकर उन्हें खिलाया-पिलाया जा रहा है, उन केन्द्रोंको खिलाने-पिलानेका आधा खर्च सरकारने देना स्वीकार किया है और काफ़ी जाँच-पड़तालके बाद देर-सबेर पूरा नहीं तो, आधेसे कुछ कम सरकारकी ओरसे मिलने भी लगा है। इसके लिये सरकारको, खास करके सम्मान्य श्री-सुखाड़ियाको धन्यवाद है। पर इसमें सुधारकी आवश्यकता है। प्रथम तो पूरे खर्चमेंसे आधा मिलना चाहिये, शीघ्र मिलना चाहिये तथा केन्द्रोंसे बाहर दी जानेवाली सहायताका भी आधा हिस्सा मिलना चाहिये। अभी कई महीनेका कार्य शेष है। सरकारकी सहायताके बिना लंबा कार्य चल सकना कठिन है। दूरके दूसरे प्रदेशोंसे घास आदि भेजनेवालोंको रेलभाड़ेमें कुछ सुविधा होनी चाहिये तथा रेलके डिब्बे जल्दी मिलने चाहिये।

गीताप्रेसके 'गीताप्रेस-सेवादल'की ओरसे कार्य सुचारु-रूपसे चल रहा है। वहाँके निःस्वार्थ कार्यकर्ता अपना पूरा समय लगाकर बड़ी लगनसे सेवाकार्य कर रहे हैं। लगभग तीन लाख रुपये अबतक जा चुके हैं। इस समय लगभग साढ़े चार हजारसे ऊपर गो-जातिके पशु गीताप्रेस-सेवादलके सेवा-केन्द्रोंमें हैं। कई महीने काम चालू रखनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। रक्षाका वास्तविक कार्य तो भगवान्के मङ्गलविधानसे ही होता है और होगा। हमलोगोंको तो ईमानदारीसे हाथ-पैर हिलाते रहना चाहिये। यह वृत्ति भी भगवान्की कृपासे ही उत्पन्न होती है।

इस सम्बन्धमें पत्रव्यवहार करना हो तो 'गीताप्रेस-सेवादल'के नामसे गीताप्रेसके गोरखपुरके पतेपर करना चाहिये। ड्राफ्ट, चेक, रुपये आदि भेजना चाहें तो गीताप्रेसके नामसे भेजने चाहिये। चेक, ड्राफ्ट क्रास नहीं होने चाहिये।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गरीबका साम्राज्य-त्याग

विद्यार्थी कपिलको जब आरक्षकोंके पहरेमें राजाके सम्मुख खड़ा किया गया तो राजा चकित हो उठा। इस किशोरावस्थामें चोरी? पूछनेपर विद्यार्थी कपिलने अपनी सारी दुर्बलताएँ ज्यों-की-त्यों राजाके समक्ष प्रस्तुत कर दीं और साथमें अपनी कंगाली हालतका भी जिक्र किया। कपिलकी सत्यवादितापर सम्राट् बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—'विप्रपुत्र! सबसे पहले मुझे आशीर्वाद देकर दो मासा स्वर्ण पानेकी धुनमें तुम अर्ध रात्रिमें घरसे चल पड़े और संदेहमें पकड़े गये। अब मैं प्रसन्न हूँ; दो मासा स्वर्ण क्या, जो चाहो माँगो, मैं दूँगा।'

कपिल जब राज्यसभामें खड़ा-खड़ा सोचने लगा—'क्या माँगूँ? राजाका स्वर्ण-खजाना या रत्न-खजाना। नहीं, नहीं, यह कम होगा, समृद्ध जीवनके लिये केवल खजाना ही काफी नहीं होता, कुछ सत्ता भी चाहिये, नहीं तो, खजानेकी रक्षा कौन करेगा? अच्छा हो, राज्यका चौथा हिस्सा भी साथमें माँग लूँ।' फिर चिन्तन चला—'सत्ताधीश होनेके बाद एक दूसरेके साथ प्रतिस्पर्धा भी चलेगी, मेरे पास तो चौथा हिस्सा ही है, मैं छोटा कहलाऊँगा, अभी तो राजा वचनबद्ध है, जो माँगूँगा, उसे देगा; क्यों नहीं आधा राज्य माँग लूँ, जिससे बराबरका राजा कहला सकूँ।' तृष्णाकी ज्वाला फिर भभकी, कपिल और आगे बढ़कर सोचने लगा—'मैं आधा राज्य लेकर भी रहूँगा ब्राह्मण ही। ये क्षत्रिय हैं, परम्परासे शासक हैं। राजा तो मेरा कुछ रख-रखाव भी रख लेगा, किंतु कभी राजाके लड़कोंमें और मेरे लड़कोंमें संघर्ष छिड़ गया तो, विजय इसके पुत्रोंकी होगी, अतः अच्छा हो वचनबद्ध राजासे पूरा राज्य ही माँग लूँ, राजाको मेरे कपड़े पहना दूँ और मैं राजाका मुकुट धारण कर लूँ, फिर झगड़ेकी सम्भावना ही नहीं रहेगी।' तृष्णाका ज्वार यहाँ भी नहीं रुका। खड़ा-खड़ा कपिल फिर सोचने लगा—'दुःख है, वचनबद्ध राजा मध्यम स्तरका है, अगर कोई चक्रवर्ती सम्राट् वचनबद्ध होता तो काम बन जाता।' राजाको रंक बनानेकी सोचकर भी कपिल तृप्त न हो सका, उलटा उलझ गया।

चिन्तनका वेग अतृप्तिकी चट्टानसे टकराकर वापिस मुड़ा। कपिल ग्लानिसे भर उठा, सोचने लगा—'हाय! तू भी कैसा मूर्ख है। दो मासा स्वर्णके लिये आया था, अब पूरे साम्राज्यसे भी तृप्ति नहीं है। धिक्! धिक्! धिक्! कैसी विडम्बना है? धनके पीछे आदमी हैवान बन जाता है। कपिल, तू इन सभीको ठुकरा? तभी सुख पायेगा।'

इतनेमें सम्राट्ने मधुरतासे पूछा—'विप्रपुत्र! सोच लिया?' तत्काल कपिल बोला—'हाँ, राजन्! मैंने सोच लिया है और निर्णय भी कर लिया है। इस अर्थसंग्रहको त्यागकर आजसे मैं अपरिग्रही जीवन बिताऊँगा।' कपिलने केवल कहा ही नहीं, तत्काल गृहस्थपरिधानका त्याग कर मुनिजीवन धारण कर लिया। राजा एवं राज्यपरिषद्के लोग सब अवाक् रह गये कपिलके इस तृष्णा-त्यागपर!

—मुनि श्रीछुमेरमलजी, प्रेषक—दिल्ली प्रदेश अणुव्रत समिति।

(२)

प्रभु ब्याजसहित कर्मका फल देते हैं

भैयादूजके दिन मैं ट्रेन लेकर अपने कामपर गया था। उस दिनका काम पूरा करके, 'हम तो त्योहारवारके दिन भी बेगार करके ही पेट भरनेको बने हैं।' ऐसे निराशा-भरे विचार करता हुआ शहरमें अपने किरायेके घरकी तरफ भारी पैरोंसे जा रहा था। इसी बीच सामने कोई मिला; यह तो प्रोफेसर प्रकाश ही था। 'अहो विभाकर! तुम्हें देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।' उसने कहा।

हम दोनों साथ पढ़ते थे। आरम्भमें इसे पढ़ाईसे नफरत-सी थी, पर पीछे शारदादेवीकी कृपा होनेपर यह पढ़ाईमें बहुत जल्दी आगे बढ़ गया। संयोगवश मैं आगे नहीं पढ़ सका। हम दोनों सहपाठियोंका भाग्यवैचित्र्य तो देखिये। यह प्रोफेसर साहेब बनकर सप्ताहमें थोड़ेसे घंटे समाजकी सेवामें देकर मौज करता है और मैं रात-दिन किस प्रकार बोझ खींचता हूँ। इस प्रकारका हल्का-सा असंतोष मेरे चित्तमें उदय हो आया।

प्रकाश बड़ा ही विचक्षण-बुद्धि है, उसने मानो मेरे मनके विषादको जानकर यों कहा—'गार्ड साहेब! तुम्हें तो रोज नये-नये प्रवासियोंसे उल्लास मिलता है और हमें तो रोज उन्हीं बच्चोंको जबरदस्ती विद्याका पानी पिलाना पड़ता है। इस शहरमें हालमें ही मेरी बदली हुई है, अब कभी फुरसतमें मिलकर तुमको तुम्हारी इस स्थितिमें रहनेवाले सौभाग्यका विश्वास कराऊँगा।'

प्रकाशमें स्थित प्रसन्नताके सौरभका मुझे पता लगा और मैंने इससे कहा—'प्रकाश! तुम तो कायमी उल्लासके झरने हो, मुझे ऐसी कायमी मौज कहाँ मिलती है?'

प्रकाशने कहा—'मेरी प्रसन्नता मेरी इस सुखवाली

नौकरीके कारण है, कदाचित् तुम ऐसा कहो तो अपने साथ पढ़नेवाले उस पण्डितकी ओर देखो। उसके मनका नशा ही कुछ और है। स्वयं प्रसिद्ध लेखक बननेकी धुनमें है; फिर, संस्कृत श्लोकरचनाका एक विशिष्ट प्रकारका प्रयास कर रहा है। पत्नीसहित अपनेको कभी चाहे फाँका करना पड़े, तो भी सुनो उसका एक हालमें बनाया हुआ एक श्लोक—

गेगेरिनस्य मार्जारी प्रत्यहं भोजनं निजम्।
समानीतं विमानेन फ्रान्सेभ्यः कुरुते ध्रुवम्।
केषांचित् प्राणिनां भाग्यं संसारे मानवाधिकम्॥

'अवकाश-यात्री गेगेरिनकी बिल्ली प्रतिदिन फ्रांससे निश्चित विमानद्वारा मँगाया हुआ भोजन करती है। कितने ही प्राणियोंका भाग्य संसारमें मनुष्यसे भी बढ़कर होता है।'

[गेगेरिनको पेरिसमें भेटस्वरूप एक बिल्ली मिली थी, उसको रशियन भोजन अच्छा नहीं लगता, अतः उसके लिये प्रतिदिन विमानद्वारा फ्रांससे भोजन मँगवाया जाता है।]

मैंने प्रकाशका कंधा थपथपाते हुए कहा—'शाबाश पण्डित! जीता रह। और प्रकाश! तुमने तो एक ही पलमें प्रकाश फैलाकर मेरे मनके कोनेमें भरी उदासीकी सारी काली छायाको दूर कर दिया। चलो, मेरे यहाँ चलो।' उसने 'मैं अपनी सुविधा देखकर आऊँगा' यों विवेकपूर्वक कहकर मुझसे विदा ली। रात्रिके दीपक रास्तेमें उजियाला कर रहे थे। एक भिखारिन बहन भिक्षापात्रमें रहे रोटीके टुकड़ों तथा खिचड़ीकी खुरचनको खा रही थी और सामने बैठे बच्चेको खिला रही थी। बालक खानेकी वस्तुकी अपेक्षा भी, माँ जो उसको ममताभरी दृष्टिसे देखकर खिला रही थी, उससे तृप्ति प्राप्त कर रहा था।

एक बँगलेमें कोई भजनीक भजनकी पंक्ति सुना रहा था—

नहीं ईश रखते कभी किसी व्यक्तिका भार।
व्याजसहित देते उसे उसकी वस्तु उदार॥

कृतज्ञतासे सिर झुकाकर मैंने कहा—'प्रभु! तुमने मुझे काम करनेका अवसर दिया, इसके लिये मैं आभारी हूँ। मेरी दुखी हालत है, ऐसी कोई शिकायत मेरे मनमें नहीं रह गयी है। सत्कर्ममें प्रवृत्त करनेवाले तुम्हारे अटल तन्त्रके प्रति मेरी गहरी श्रद्धा बनी रहे।' 'अखण्ड आनन्द'।

—सवाईलाल ई० पंड्या

(३)

आदर्श ईमानदारी

नीच स्वार्थपरता और बेईमानीके इस अनैतिक युगमें निम्नलिखित सच्ची घटना ईमानदारीके प्रति आस्था उत्पन्न करती है।

साँगली (महाराष्ट्र) में राजस्थान नागोर जिलेके जाखेड़ा नामक ग्रामके निवासी सेठ श्रीरामजी साँवलराम मालूका आढ़तके व्यापारका पुराना फार्म है। श्रीसाँवलरामजी बड़े सज्जन हैं और भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायण-मन्दिरके प्रधान ट्रस्टी हैं।

घटना गत २० नवम्बर १९६८ की है। फर्मके एक कर्मचारी स्थानीय श्रीरत्नाकर बैंकसे एक हजारके चेकके रुपये लाने गये थे। बैंकके केशियर महोदयने एक हजारके बदले दस हजार रुपयोंका बंडल दे दिया। सौ-सौके नये छोटे नोट निकले ही थे, इससे भ्रम हो गया। कर्मचारीने आकर नोटका बंडल श्रीसाँवलरामजीके सुपुत्र श्रीनन्दकिशोरजीको दे दिया। उन्होंने बिना ही गिने उसे तिजूरीमें रख दिया और वे अपने पावरलूमका काम देखने तुरंत माधवनगर चले गये।

लौटकर आवश्यक होनेपर शामको करीब पाँच बजे नोट निकाले, तब पता लगा कि एक हजारके स्थानपर दस हजारका बंडल आ गया है। तबतक रत्नाकर बैंकसे कोई सूचना नहीं आयी थी। श्रीसाँवलरामजीको इसका पता लगते ही उन्होंने बैंकको फोन करके यह बात बतायी। बैंकवालोंने हिसाब मिलाकर देखा तो उसमें नौ हजार कम थे। बैंकसे खबर आयी और सेठजीने तुरंत अपने कर्मचारीके द्वारा रुपये बैंकमें भिजवा दिये।

बैंकके मैनेजरने इसके लिये सेठ साँवलरामजीका अभिनन्दन किया और समाचारपत्रोंमें इस घटनाको प्रकाशित कराया। आजके अर्थलोलुप आसुर-युगमें ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं। —पं० घनश्यामप्रसाद पारीक, पुजारी

(४)

'मैं अपनी माँका कातिल कैसे हो सकता हूँ?'

तहसीलदार मुंशी अब्दुर्रहमानसे जिला गुड़गावाँके लोग अच्छी तरहसे परिचित हैं। बहुत बड़ा मतान्ध था। हाँ, नगदनारायणके मामलेमें ईमानदार था। फीरोजपुर झिरकामें तहसीलदार था। घरपर एक बूढ़ी गाय बँधी रहती थी।

दो कसाई गौको खरीदनेके लिये पहुँचे। अब्दुर्रहमान गायको बेचनेकी बात सुनकर आग-बबूला हो उठा। उन्हें उसने सैकड़ों गालियाँ दीं। फिर, अपने चपरासीके द्वारा धक्के देकर मकानके बाहर निकलवा दिया, तो भी गुस्सा न गया। इसलिये कहता चला गया—'हरामजादे! मेरी

माँको खरीदने आ गये हैं। इसने मुझे और मेरे बच्चोंको दूध पिलाया है, बारह बछड़े दिये हैं, बछड़ोंने मेरा मकान तैयार करवाया है। इनकी बदौलत मेरी जमीनने सोना उगला है। क्या मैं अपनी माँका कातिल हो सकता हूँ ? तोबा-तोबा ! मेरे मालिक, तू इस कसाई श्रेणीको दुनियासे उठा ले !'

श्रीभोलेरामने यह घटना अपनी आँखों देखी। उन्हें बहुत अचरज हुआ कि जो व्यक्ति तहसीलदार होकर अंदर और बाहरसे मुसल्मानका हितचिन्तक हो, वह गायके मामलेमें इस तरह सख्त ! अब्दुर्रहमानने यह भी बताया—'मैं एक वर्नाक्यूलर स्कूलके हेडमास्टरका बेटा हूँ, मुझे यह तहसीलदारी कैसे मिल सकती थी ? गौकी सेवाने ही मुझे यह मान प्रदान किया है।'

बासठ वर्ष पहले गुड़गावाँकी गोशालाकी आधार-शिला अब्दुर्रहमानने ही रक्खी थी। रुपया हिंदुओंका था, किंतु श्रीगणेश गोभक्त मुसल्मानसे हुआ। अब्दुर्रहमानने तहसीलदार होते हुए छोटे-बड़े हर हिंदूसे बड़ी लगनके साथ गोशालाके लिये चंदा उगाहा। उसे इस कामके लिये किसीके घर जानेमें जरा भी हिचकिचाहट न हुई। —धर्मवीर

(विकास-कुंज,ज्वालापुर)

(५)

बढ़कर कौन ?

महुवाकी तरफसे आनेवाली सुबहकी ट्रेनमें भावरडी गाँवका चार प्राणियोंका एक कुम्हार कुटुम्ब बैठा था। उसमें एक बहन चौधार आँसू बहाती रो रही थी। बहुतसे मनुष्य आ-आकर पूछ-ताछकर अपना रास्ता पकड़ रहे थे। किसीके हृदयमें दया नहीं थी।

कुछ दूरपर एक मनुष्य और उसका एक साथी बैठा था। वह अपने छोटे भाईके विवाहपर हरिपुर गया था, पाँच सौ रुपये साथ लेकर। उनमेंसे चार सौ वहाँ दे दिये, शेष सौ रुपये उसके पास थे।

दूर बैठे ये लोग इस दृश्यको देख रहे थे। उनको संदेह हुआ कि समय खराब है और यह स्त्री है, शायद किसी बदमाशने कोई दुर्व्यवहार किया हो। यों विचारकर उक्त बहनके पास जाकर उसने पूछा—'बहन ! किसलिये रो रही हो ।' ग्रामीण बहनने उत्तरमें कहा—'बात होनेलायक नहीं है, आसमान ही टूट पड़ा है। बात सच है। पर इस कलियुगमें किसीके माननेमें भी नहीं आ सकती और यहाँ भीतर क्या हो रहा है। जो कुछ प्रभुने रचा है, वही ठीक है।'

'तो बहन ! बता तो सही। मुझसे बनेगी तो मैं कुछ मदद करूँगा।'

बहिनने कहा—'भाई ! हमलोग महुवाके पास भावरडीके रहनेवाले कुम्हार हैं। ये जो साथ हैं—मेरे घरवाले हैं। हमलोग बम्बई जा रहे हैं। हमने बम्बईकी टिकट ली थी, पर दैवयोगसे या हमारे नसीबसे वे रास्तेमें कहीं पड़ गयीं। यहाँ टिकटमास्टरने हमलोगोंको उतार दिया। यहाँसे गाँव भी दूर रह गया और बम्बई तो पाँच सौ कोस दूर है। यहाँ हमारा अपना कौन है और कौन ऐसा भीतरी स्नेहवाला रामका बंदा है जो नाहक झंझटमें पड़े और हमारी मदद करे !'

'तो कितने पैसे हों तो तुम्हारा बम्बई जाना हो जाय ?'

'भाई ! सौ रुपये चाहिये। पर इस कलियुगमें किसके दिलमें प्रभु बसते हैं ?'

'लो बहिन ! ये सौ रुपये।' यों कहकर सौ रुपयेका नोट उसने दे दिया।

'भाई ! तुम ही हमारा प्रभु हो; हमारी लाज रक्खी है। प्रभु तुम्हारा भला करेंगे। पर तुम कहाँ रहते हो ? ठिकाना बता दो तो हम वहाँ जाकर तुरंत रुपये भेज दें।'

'तुममें ईमानदारी हो तो भेज देना। पर मैं रुपये उगाहने वहाँ आऊँ, मेरा यह काम नहीं है। मालिकपर भरोसा करके मैंने रुपये दिये हैं। यह तो, मैं भाईके विवाहपर गया था, ये रुपये उसमें बच गये थे, सो तुम्हारे तकदीरसे काममें आ गये।'

'नहीं, नहीं, भाई ठिकाना तो दे दो। हमपर तुम्हारा ऋण रहेगा तो हम किस भवमें छूटेंगे।' बहुत विवादके बाद उस भाईने अपना अहमदाबाद बापूनगरका ठिकाना दे दिया।

और घर लौटकर इस सम्बन्धमें किसीसे कुछ नहीं कहा। लगभग पंद्रह दिनोंके बाद ही बम्बईसे उनका पत्र मिला—लिखा था—'एक सौ पाँच रुपयेका मनीआर्डर भेजा है। पाँच रुपये भाईके तिलकके भेजे हैं। मिलनेपर तुरंत पहुँच लिखना।'

इनमें बढ़कर कौन ? रुपये देनेवाला या भेजनेवाला ?

'अखण्ड आनन्द' —गुलाबभाई, कालुभाई

सत्संग-संस्थाओंकी सूची
(सत्संग-संचालकोंसे निवेदन)

भारत धर्म तथा अध्यात्मप्रधान देश है। भारतमें शायद ही कोई ऐसा स्थान हो जहाँ ज्ञान, भक्ति, शास्त्रीय कर्म तथा धर्मपर श्रद्धा रखनेवाले मनुष्य न हों। ऐसे भी सहस्रों स्थान होने चाहिये जहाँ नियमित सत्संगकी या धर्मसभाकी व्यवस्था हो। अतएव यह निश्चय किया गया है कि सत्संग-संस्थान-सम्बन्धी विवरण संग्रह किये जायँ। संस्थानोंकी एक सूची बनायी जाय। तदनन्तर, यथासम्भव उनमें परस्पर परिचय किया जाय, सौहार्द तथा निकटका सम्बन्ध बढ़ाया जाय तथा प्रोत्साहन दिया जाय। अतएव समस्त सत्संग-संचालकोंसे नम्र निवेदन है कि वे निम्नलिखित प्रश्नोंका उत्तर लिखनेकी कृपा करें—

सत्संगकी कोई संस्था हो तो उसका तथा उसके कार्यकर्ताओंके नाम तथा पूरे पतेसहित ग्राम, डाकघर, जिला, प्रदेशका नाम लिखें। कोई नियमावली या रिपोर्ट छपी हो तो कृपया भेज दें। सत्संग-संस्थामें सदस्यताका कोई शुल्क है या निश्शुल्क है ? शुल्क है तो कितना ? सत्संग प्रतिदिन होता है या साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक होता है ? प्रतिदिन होता है तो किस समय ? सत्संग-संस्थानमें कोई उत्सव या 'साधन-सप्ताह' 'साधन-पक्ष' आदि मनाये जाते हों तो उनका विवरण लिखें। सत्संगमें कोई नियत वक्ता हैं या कोई भी सज्जन प्रवचन कर सकते हैं। सत्संगमें किस विषयकी प्रधानतया चर्चा होती है। सत्संग अद्वैतप्रधान होता है या भक्तिप्रधान।

किसी खास धर्म या सम्प्रदायका सत्संग हो तो उसका नाम लिखें (जैसे—सनातनधर्म, आर्यसमाज, जैन, सिख, बौद्ध, ब्राह्मसमाज। सनातनधर्ममें—शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्य तथा उनके अवान्तर सम्प्रदाय, आचार्योंके सम्प्रदाय, विभिन्न संतोंके विभिन्न मत-पंथ आदि)। सत्संगमें कीर्तन-भजन भी होता है क्या ? केवल स्त्रियोंका या केवल पुरुषोंका सत्संग होता हो तो उसका विवरण लिखें।

सत्संग-संस्थाकी ओरसे कोई दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक आदि पत्र भी प्रकाशित होता है क्या ? होता है तो किस नामसे, किस भाषामें तथा उसके सम्पादक कौन हैं ? कृपया लिखें।

सत्संग-संस्थाकी ओरसे ग्रन्थ-प्रकाशन भी होता है क्या ? होता हो तो अबतक प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची, भाषा तथा विषयका उल्लेख करते हुए (छपी हुई हो तो वह, नहीं तो लिखकर) भेजनेकी कृपा करें।

सत्संग-संस्थामें पुस्तकालय भी है क्या और उसमें किन विषयोंकी पुस्तकोंका प्रधानतया संग्रह किया जाता है।

संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, बंगला आदिमेंसे किसी भी भाषामें पत्र लिखनेकी कृपा करें।

—हरिकृष्ण दुजारी, सत्संग-विभाग, पो० गीतावाटिका, (गोरखपुर) उ० प्र०

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सङ्घके सदस्योंसे आवश्यक निवेदन

प्रचार-सङ्घके सदस्योंके रजिस्टर नये बदलने आवश्यक हैं। सभी सदस्योंके पते रजिस्टरमें शुद्ध लिखे जायँ, जिससे उनको प्रचार-सङ्घकी सामग्री सुरक्षित रूपसे मिल जाय—इसी दृष्टिसे प्रचार-सङ्घके सभी सदस्योंसे प्रार्थना है कि वे अपना पूरा निश्चित पता साफ-साफ लिखकर भेजें। पता लिखते समय अपना पाठ चालू रखनेकी सूचना तथा अपनी सदस्य-संख्या अवश्य लिखनेकी कृपा करें।

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सङ्घ, पो० स्वर्गाश्रम (पौड़ी-गढ़वाल) उ० प्र०

रजि० सं० एल्० १७५

गीताभवन-स्वर्गाश्रम-सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी **गीताभवन-स्वर्गाश्रममें** सत्सङ्गका आयोजन होनेकी बात है। सबसे प्रार्थना है कि सदाकी तरह सत्सङ्गी महानुभाव तथा माताएँ-बहिनें अधिकाधिक संख्यामें केवल सत्सङ्ग तथा भजनके पवित्र उद्देश्यसे ऋषिकेश पधारें। श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज और भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारकी चैत्र शुक्लपक्ष (सम्भवतः नवरात्रके बाद) में वहाँ पहुँचनेकी बात है। परम श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजसे भी प्रार्थना की गयी है तथा अन्यान्य महात्मागण भी पधारनेवाले हैं।

नौकर-रसोइया आदि यथासम्भव साथ लाने चाहिये। स्वर्गाश्रममें नौकर-रसोइया मिलना कठिन है। स्त्रियाँ पीहर या ससुरालवालोंके अथवा अन्य किन्हीं सम्बन्धीके साथ वहाँ जायँ, अकेली न जायँ एवं अकेली जानेकी हालतमें कदाचित् स्थान न मिल सके तो कृपया दुःख न करें। गहने आदि जोखिमकी चीजें साथ नहीं रखनी चाहिये। बच्चोंको जहाँतक बने साथ न ले जायँ। गतवर्ष बच्चोंके कारण बड़ी बाधा आ गयी थी; नितान्त निरुपाय हों तो बच्चोंको वे ही लोग साथ ले जायँ, जो उन्हें अलग डेरेपर रखनेकी व्यवस्था कर सकते हों; क्योंकि बच्चोंके कारण स्वाभाविक ही सत्सङ्गमें विघ्न होता है। खान-पानकी चीजोंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है, यद्यपि इस बार भी बड़ी कठिनता है; परंतु दूधका प्रबन्ध होना बहुत कठिन है।

सदाकी भाँति ही यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गमें पधारनेवालोंको ऐश-आराम या केवल जलवायु-परिवर्तनकी दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्गके उद्देश्यसे ही जाना चाहिये तथा वहाँ यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधकजीवन बिताते हुए सत्सङ्गमें अधिक-से-अधिक भाग लेना चाहिये।

नये डाकघरकी सूचना

गीतावाटिका (GITAVATIKA)

सम्पादक 'कल्याण', साधकसंघ, नाम-जप-विभाग, सम्पादकीय विभाग तथा सम्पादक 'कल्याण' और हनुमानप्रसाद पोद्दारके तथा उनके पतेपर भेजे जानेवाले सब पत्र, पोस्टकार्ड, रजिस्टर्ड पत्र, पारसल, बीमापत्र, मनीआर्डर आदि अब पोस्ट 'गीताप्रेस' के नाम न भेजकर नये स्थापित पोस्ट गीतावाटिका, (गोरखपुर) उ० प्र० के नामसे भेजिये।

'कल्याण' नामक हिंदी मासिकपत्रके सम्बन्धमें विवरण

फार्म चार—नियम-संख्या—आठ

१—प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर

२—प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

३—मुद्रकका नाम—मोतीलाल जालान
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४—प्रकाशकका नाम—मोतीलाल जालान
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५—सम्पादकका नाम—(१) हनुमानप्रसाद पोद्दार,
(२) श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
दोनोंका राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
दोनोंका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

६—उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस समाचार-पत्रके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवनकार्यालय; पता—नं० १५१ महात्मागाँधी रोड कलकत्ता (सन् १८६० के विधान २१के अनुसार रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था)

मैं मोतीलाल जालान, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

मोतीलाल जालान
प्रकाशक

दि० १ मार्च १९६९